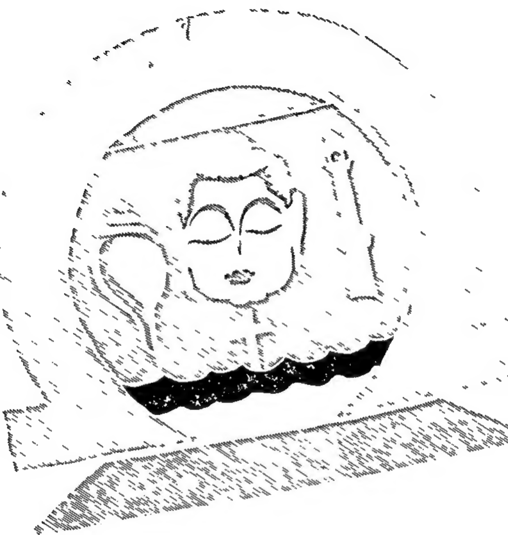


सांस्कृतिक गौरव के स्तंभों



प्रभात प्रकाशन, दिल्ली

प्रकाशक प्रभात प्रकाशन चावडी बाजार, दिल्ली ११०००६
मुद्रक कला भारती नवीन शाहदरा दिल्ली ३२/
संस्करण प्रथम, १९९० मूल्य सत्तर रुपये

SANSKRITIK GAURAV KE EKANKI
Ed by Dr Girraj Sharan Rs 70 00
Published by Prabhat Prakashan Chawri Bazar Delhi 110006

एक शाम, अपने साथ

शाम का समय है। मेरे एक तरफ जगल है और दूसरी ओर पक्के मकानो मे रहने वाली धनी शहरी आबादी। बीच मे सडक है, जो इन दोनो सस्कृतियो को आपस मे विभाजित कर रही है। मुझे लगता है जैसे इन दोनो म तालमेल न बनाये रखने के कारण सामाजिक सतुलन बिगड जाता है। मैं उस ओर अधिक झुक जाता हूँ, जहा पत्थर की लम्बी सडक तो है, ऋषि मुनियो की भाँति घने घने ध्यान मग्न पेड नही हैं। मैं अपने इतिहास पर दृष्टि केन्द्रित करता हूँ और अपने सास्कृतिक मूल्यो पर विचार करता हूँ, तो मुझे लगता है कि मेरी जीवन-पद्धति तो इन विशाल मैदानो, इन वृक्षो और इन खेतो म बिखरी पडी है, जो देवताओ की तरह दयालु हैं। प्रकृति की भाँति विशाल और आकाश की तरह असीम और खुली खुली।

सोचता हूँ, मैं यहाँ क्यो आया, इस अकेले और निजन मैदान मे? क्या वह सस्कृति अप्रत्यक्ष रूप म फिर मुझे अपनी तरफ खीच रही है, जिसे मैं औद्योगिक सभ्यता की तरफ बढते हुए बहुत पीछे छोड आया हूँ। मेरे तलुओ के नीचे भुरभुरी मिट्टी है, जिसमें हरी हरी घास के अकुर फूटने आरम्भ हो गए हैं। लगता है, गर्मियो की ऋतु धरती पर महीनो तक आग बरसाकर अपने अग्नि-पख समेट चुकी है, और वर्षा ऋतु के पहले पानी ने जलती-सूखी मिट्टी के होठ तर कर दिय हैं। हरी-हरी घास उग आई है। वृक्षो न अपने मैले वस्त्र उतार दिए हैं वह धुले धुले नये-नये-से दिखाई पड रहे हैं। हवा के हिलकोरो मे नृत्य करती हुई पत्तियाँ, वर्षा की पहली हरियाली लिये छोटे-बडे और मँझोले आकार मे खेत—यह मानव-सस्कृति की यात्रा के ये चिह्न हैं जिनमे सामाजिक जीवन की शान्ति, सुख और नैतिक मूल्यो की परम्पराएँ निहित हैं।

मुडकर देखता हूँ तो इस स्थान से कुछ ही दूरी पर भवन शृखलाओ का यह कठोर सिलसिला है, जहाँ ठण्डी पक्की सडकें हैं, कल-कारखाने हैं विद्युत प्रकाश है, ज्ञान है, लेकिन सवेदनहीन—सुख-समृद्धि है लेकिन मानवता रहित

ज्ञान और सुख-समृद्धि के बीच मेरी सोच का बिंदु आकर फस गया है—मैं पत्थर एक टीले पर बैठ गया हूँ।

याद आता है—

ससार का सृजन पूर्ण हो चुका है, धरती अपना वतमान आकार ग्रहण कर चुकी है, मिट्टी का छाती चीरकर पेड पौधे बाहर निकल आए हैं, सूय देव ने उदय और अस्त होना आरम्भ कर दिया है, समय रात और दिन के बीच विभाजित हो चुका है। आदमी अपनी कमर के बल सीधा खडा हो चुका है, वह ज्ञान का प्यासा है, जानना चाहता है, प्रकृति का रहस्य क्या है, जीवन व्यतीत करने का सर्वोत्तम माग कौन सा है? पेट की आग बुझ चुकी है, लेकिन मस्तिष्क की आग दहक रही है, सनसना रही है। वह उस ज्ञान को प्राप्त करना चाहता है, जो उसे यह बताये कि आदमी अय जीव ज तुओ से श्रेष्ठ क्यो है?

तभी प्रजापति मानव की मनोस्थिति भाप लेते हैं।

वह विश्वकर्मा को इस लम्बी चौडी धरती पर भेजते हैं। प्रजापति न विश्वकर्मा को दो सुदर मटकिया सोप दी है। आदेश होता है कि वह इन मटकिया का इसाना के बीच ले जाएँ और इनमे रखी हुई सामग्री रोटी और ज्ञान के लिए व्याकुल लोगो के बीच बाट दी जाए।

एक मटकी पूरी तरह भरी है,
दूसरी लगभग खाली,
भरी हुई मटकी मे सुख है,
और खाली मटकी मे थोडा सा ज्ञान,

आदेश हुआ है कि भरी हुई मटकी मे जितना सुख है, वह बिना भेद भाव और पक्षपात किये, निरीह मानव के बीच वितरित कर देना और थोडे से ज्ञान की पूजी को जा मटकी के पेंद म पडी है और अधिक भरना, और अधिक ज्ञान अर्जित करना, ताकि मानव जाति उससे लाभ उठा सके।

विश्वकर्मा विशाल आसमानो के फलाव को लाँघते हुए धरती की ओर चल पड हैं। यात्रा लम्बी है और मटकिया साथ हैं।

विश्वकर्मा उडते गए उडत गए यहा तक कि धरती निकट आ गई। उ होने अपनी भुजाओ के बीच दबी मटकियो को देखा और यह सोचकर विचलित हो गए कि जो आदेश प्रजापति से मिला था, वह उसे भूल गए हैं।

उ हे याद नही रहा कि कौन सी वस्तु उ हें बाँटनी थी और कौन-सी अर्जित करनी थी?

विश्वकर्मा धरती पर आए। उ होने भूलवश ज्ञान बाँटना और सुख बटोरना आरम्भ कर दिया। ज्ञान था ही कितना कितने लोगो मे वँट सकता था? उसे और अर्जित तो किया नही गया था कुछ ही व्यक्तिया म बँटकर समाप्त हो गया—लेकिन भूल थी जा हो चुकी थी और उसका सुधार सम्भव नही था।

विश्वकर्मा धरती पर ज्ञान बाँटन और सुख बटोरने का काय पूर्ण कर कभी के वापस जा चुके हैं। लाखा और लाखा वप बीत गए इस घटना को

और तब से आज तक आदमी
सुख बटोर रहा है और ज्ञान बाँट रहा है।

ज्ञान बाटने वाले कम हैं और सुख बटोरने वाले सब एक होड लगी है, सुख-सुविधा प्राप्त करने की, जीवन से रस निचोडने की, ऐश्वय और विलासिता अर्जित करने की। आदमी सोता नही है, भाग रहा है सुख सुविधाओ की खोज मे, धन दौलत की लालसा म।

लाखो साल गुजर गए हैं, इस दायरे म घूमते हुए मानव जाति को

सोचता हू यदि विश्वकर्मा, प्रजापति का निर्देश न भूले होते तो यह दुनिया कैसी होती, मानव सस्कृति की स्थिति व गति क्या होती तब ?

तब शायद लकेश्वर रावण पैदा ही न हुआ होता इतिहास म। क्या वह विश्वकर्मा की भूल ही थी जिसने रावण को उत्पन्न किया? रावण, जो एक प्रतीक है घमड और स्वाथ का। घमड और स्वाथ, जो पैदा होते हैं सुख और सुविधाओ की खोज से धन शक्ति और सत्ता क गभ स।

विश्वकर्मा से भूल न हुई होती तो क्या आदमी ज्ञान की भूख मिटाने के बदले धन की भूख को शात करने के लिए इस तरह मारा-मारा फिरता अपनी ही जाति का दुश्मन हो जाता एक गिरोह दूसरे पर आक्रमण करता एक राजा दूसरे राजा पर चढाई कर निर्दोष लोगो का खून बहाता, दुनिया म कभी युद्ध होते, शत्रुता जन्म लेती? शायद नही ।

ज्ञान बाटने और सुख बटोरने की लालसा ने आदमी के सास्कृतिक जीवन को कितना विकृत किया सोचता हूँ तो भय से काप उठता हूँ। कल्पना होती है कि यदि विश्वकर्मा न प्रजापति का आदेश याद रखा होता तो यह दुनिया वसी न होती जैसी आज है।

तब मानवो का एक शात समाज होता वगविहीन, पूण आर्थिक समानता लिये हुए। लोग पेट भर रोटी खाकर प्रसन्न रहते और ज्ञान की खोज म एक-दूसरे से सहयोग करते, काले गोरे और ऊचे नीचे के बीच बँटा हुआ यह समाज इतना असहनीय कभी न होता जितना अब है।

हर हाथ म पुस्तक होती, हर हाथ म कलम। दुनिया म अज्ञानता के अधकार का नही ज्ञान के प्रकाश का राज्य होता। ससार निधन और समद्ध क्षेत्रो के बीच कभी न बँटता। लेकिन खेद कि ऐसा नही हुआ।

आदमी फँस गया सुख-सुविधाओ की दल दल मे विलासिता के घनघोर और अपार जगल म, जहा से बाहर निकलने का कोई माग कही है, क्योकि विलासिता की धरती से जिस स्वाथ के बीज अकुरित होते हैं उसका कोई अन्त नही है कोई सीमा नही उसकी

विश्वकर्मा की भूल थी कि मानव संस्कृति,
ज्ञान प्रधान होने के स्थान पर—
अर्थप्रधान हो गई

और इस अर्थ प्रधान संस्कृति में मैं पुनः दुखी होकर विश्वकर्मा से पूछता हूँ—

'भगवन ! यह क्या किया तुमने, तुम्हारी एक भूल से कितना अनर्थ हो गया दुनिया में '

वह धीरे से मेरी पीठ पर हाथ रख देते हैं, नम और मुलायम। आवाज आती है—

अगर ज्ञान ही ज्ञान होता तो तुम अज्ञानता को पहचानते कैसे ? देवता ही देवता होते, तो राक्षसों के अभाव में उनकी महानता को पहचानता कौन ? मेरी एक स्वाभाविक भूल ने दुनिया को स्वर्ग तो नहीं बनाया, लेकिन नरक को स्वर्ग में परिवर्तित करने की प्रेरणा अवश्य दी—

सुख-सुविधाओं की मटकी ने रावण को पैदा किया तो ज्ञान के पात्र ने राम को।

राम का अस्तित्व इसी में है कि वे रावण को पराजित कर सकें, उसका वध कर सकें, समाप्त कर सकें उसे

लेकिन उसका वध कहाँ हुआ ? वह समाप्त कब हुआ ? वह तो मरकर फिर जीवित हो उठता है—

'लेकिन फिर मार दिया जाता है।' विश्वकर्मा की धीमी आवाज मेरे कानों में रस घोलती है

'मेरी भूल ने संस्कृति को अर्थ प्रधान अवश्य बनाया लेकिन रावण का महत्त्व नहीं दिया। आज भी संसार में ज्ञान का महत्त्व है ज्ञान का आदर है, धन का नहीं।

'धन दौलत और भोग विलास का महत्त्व होता तो रावण जीवित रहता वह मर गया तो सिद्ध हुआ, ज्ञान जीत गया है, स्वार्थ और घमंड हार गया है—

'और रावण तो तभी हार गया था जब कि राम के हाथों उसका वध भी नहीं हुआ था '

मैं चौंककर विश्वकर्मा की ओर देखता हूँ, 'क्या कह रहे हैं भगवन !'

आवाज सुनाई देती है 'ज्ञान का दैवी प्रभाव राक्षसों की प्रवृत्ति तक बदल देता है। तुम शायद इस वास्तविकता से परिचित नहीं हो रावण तो तभी हार गया था जब कि राम के हाथों उसका अन्त भी नहीं हुआ था। और यही मानव संस्कृति की जीत थी धर्म की अधर्म पर विजय थी।

आवाज कहीं दूर अंतरिक्ष में गुम हो गई है।

मैं आश्चर्य के सागर में डूबकर जैसे ही पुनः तट पर आता हूँ फिर वही आवाज मेरे निकट आती है मुझसे कहती है

'याद करो—'

असाधारण दैवी शक्तियों वाले रावण ने सीता माँ का हरण कर लिया है और वदी बनाकर अशोक वाटिका मे रख छोडा है। वह प्रयास कर रहा है, सीता को अपने फंद म फाँस ले लेकिन कोई भी प्रयास सफल नही हो रहा है उसका।

'रावण बहलाता है, फुसलाता है धमकाता है, डराता है लेकिन पतिव्रता सीता पर उसका कोई प्रभाव नही है। कोई भय नही है, रावण का उनके मन मे। खीज उठना है रावण यह देखकर, यह सोचकर कि एक महाशक्तिशाली राजा के सामने एक निरीह महिला पहाड की तरह अडिग बनी खडी है और वह उसका कुछ भी नहीं बिगाड पा रहा है।

'खीज और क्रोध से टूटकर रावण व्यग्रता के साथ अपने महल के अहाते मे टहल रहा है। उसे कोई उपाय नही सूझ रहा है कि किस प्रकार वह सीता को सहवास के लिए सहमत करे। हर चाल असफल हो चुकी है, हर प्रभाव बेकार जा चुका है।

'ऐसा पहले तो कभी नही हुआ था, रावण सोचता है, उसने जब जो चाहा, पूरा हुआ। पर अब यह कैसी अनहोनी हुई है कि एक निर्बल औरत उसके अधिकार को चुनौती दे रही है और उसके कब्जे मे नही आ रही है।

'रावण पाव पटकता हुआ राजगद्दी तक आता है और सोचने लगता है वह उपाय जिससे सीता उस पर मोहित हो।

'लेकिन कुछ नही सूझता। वह निराश हो चुका है—लेकिन काम पिपासा उसे चैन से बैठने नही दे रही है।

'तभी मायावी 'कालनेमि' उसे सलाह देता है—

' 'रावण! तुम असीम शक्तियों से सपन्न हो। तुममे हर पल, हर प्रकार का रूप बदलने की पूर्ण क्षमता है। ऐसा क्यो नही करते राजा कि तुम अपनी असीम और निहित शक्तियों से राम के रूप म परिवर्तित हो जाओ। राम बनकर जब अशोक वाटिका मे जाओगे और सीता की तरफ बढोगे, तो वह तुम्हे रावण नहीं, राम ही समझेगी और अपना स्वामी मानकर तुम्हारे चरणो म झुक जाएगी। तब तुम अपनी मनोकामना पूरी करने मे स्वतन्त्र होगे तब कोई तुम्हे रोकने वाला नहीं होगा।

'रावण ने एक लम्बी ठण्डी सास भरी है। खाली खाली दृष्टि से अतरिक्ष की तरफ झांका है और निराशापूर्ण स्वर म बोल उठा है—

' 'यह भी करके देख चुका हूँ कालनेमि। यह भी करके देख चुका हूँ, किन्तु सफलता नही मिली है मुझे। जब भी राम के रूप मे अपने आपको परिवर्तित करता हूँ, तो मेरी बुद्धि भी राम जैसी ही बन जाती है। तब मुझे विलासिता की नही, दया की बात सूझती है। शरीर का सुख याद नही आता, मानवता की याद

आती है। स्वार्थ की अग्नि बुझ जाती है। बलिदान का भाव उत्पन्न हो जाता है।'

आवाज एक बार फिर चुप हो गई है और मैं ठगा ठगा-सा बैठा हूँ।

राम एक संस्कृति है और रावण पाशविक जीवन का एक क्षण। राम आदर्श जीवन का एक लक्ष्य है और रावण मानव इतिहास में लज्जा का चिह्न लेकिन यह रावण वही है जो राम के वश में राम जैसे आचरण वाला बन जाता था, जैसे सुगन्ध के सम्पर्क में आकर निगंध वस्तुएँ भी सुगंधित हो जाती हैं।

याद आती है एक महाकवि द्वारा कही गई वह कथा—जिसमें गंदी और तुच्छ मिट्टी महत्त्वपूर्ण हो गई थी—

जब वह कवि एक रूपमती के निवास के साथ बने स्नानघर के पीछे से निकलकर गया तो उसने अनुभव किया कि स्नानघर के पीछे की गंदी मिट्टी गुलाब के फूल की तरह महक रही है। कवि निस्तब्ध भाव से रुककर खड़ा हो गया। वह झुका, थोड़ी-सी मिट्टी हाथ में ली सूंघकर देखा। उसे लगा जैसे सचमुच गंदा पानी पीने वाली इस मिट्टी ने कोई सुगंधित जल पिया हो और गंदा स्वभाव बदलकर एकदम सुगंधित हो उठी हो।

कवि देर तक उस मिट्टी को सूंघता रहा, सोचता रहा और फिर उससे सम्बोधित होकर बोला—

स्नानघर के पीछे की गंदी मिट्टी बोल दुर्गंध के स्थान पर यह सुगंध तूने कहा से पाई?

चुप के कुछ भारी पल बीत गए।

तब अचानक मिट्टी के भीतर से स्वर फूटे—

'यह गुण मेरा नहीं, उस रूपमती के सुगंधित शरीर का है, जिसका पानी मेरे कण्ठ के भीतर आया और मुझे भी सुगंधित कर गया।'

कथा की मिट्टी मेरा हाथ थामकर मुझे उन महापुरुषों की ओर ले जाती है जिनकी एक हल्की सी छाया भी मानव समाज को पुण्य की ओर परिवर्तित करने के लिए पर्याप्त है। सोचता हूँ जब रावण जैसे दुष्ट की बुद्धि राम के देश में आकर अपनी प्रवृत्ति बदल सकती है, तो मानव इतिहास के उन महापुरुषों का सम्पर्क, जिनके कन्धों पर मनुष्य की लाखों वर्ष पुरानी संस्कृति खड़ी है आज के आदमी का क्या नहीं बदल सकता?

सूरज कब का डूब गया है। चारों ओर अँधेरा है। मैं पुन रोशनी की तलाश में आबादी की तरफ चल निकला हूँ।

१६, साहित्य विहार
बिजनौर (उ० प्र०)

(डॉ०) गिरिराजशरण अग्रवाल

क्रम

अग्नि-परीक्षा



कुँवर चंद्रप्रकाशसिंह

पात्र परिचय

रावण	प्रसिद्ध लंकाधिपति दानवेन्द्र
मन्दोदरी	रावण की पत्नी
विभीषण	रावण का अनुज, प्रसिद्ध रामभक्त
राम	प्रसिद्ध मर्यादापुरुषोत्तम, दाशरथि
लक्ष्मण	राम के प्राणतुल्य अनुज
सीता	राम की पत्नी जगज्जननी जानकी
हनुमान	प्रसिद्ध रामभक्त, बजरंग बली
सरमा	विभीषण की पत्नी
कला	विभीषण की पुत्री
त्रिजटा	सीता की संरक्षिका ममतामयी राक्षसी

जाम्बवान, सुग्रीव, अंगद, नल, नील, अन्यान्य राक्षसियाँ, पृथ्वी, अग्निदेव आदि।

समय दिन का तीसरा प्रहर।
स्थान लंका का युद्ध-क्षेत्र।

दृश्य एक

[कुछ ही समय पूर्व युद्ध समाप्त हुआ है। विशाल रण भूमि असंख्य आहत एवं मृत वानरों, भालुओं एवं राक्षसों

से पटी पडी है। रक्त के प्रवाह म वीरा और वाहनो के कटे हुए हाथ-पैर एव आयुध बह रह हैं ! काको, चीला, गद्धो और शृगाला के झुण्ड के झुण्ड लाशो पर टूट रहे हैं, कोई नेत्र निकालकर भागता है, कोई अँतडिया नोच नोचकर खा रहा है। कोई रक्त पीकर तप्त हो रहा है। युद्धभूमि के मध्य भगवान राम के वाणा से आहत होकर रावण मुमूर्षु अवस्था म पडा है। उसके आसपास उसके सैंकडो सिर और वाहु भगवान राम के बाणो से विद्ध पडे हैं, मानो सूय की किरणा ने राहुओ की सना को बेध डाला है। पट्टमहिषी मन्दोदरी रावण का सिर अपनी जघा पर रखे हुए विलाप कर रही हैं। वे विलाप करती हुई रावण की अनेकानेक पत्नियो और दास दासियो से घिरी हैं। रावण के चरणा को अपनी गोद म लिये हुए अवनतमुख विपण्णवदन विभीषण वैठे हैं।]

मन्दोदरी शौय का मूर्तिमान विग्रह जा रहा है सूय धरती पर पडा है, चन्द्रमा अँधेरे मे डूब गया है। आकाश से भी उन्नत आपके वे सिर, जो ग्रहा और नक्षत्रा के आतपत्र से सेवित रहते थ, आज जम्बुका द्वारा ठुकराये जा रहे हैं। हाय ! आँखें खालो स्वामी !

रावण (धीरे से आखें खोलकर) मन्दोदरी ! धय धारण करो राजराजेश्वरी !

मन्दोदरी (रोती हुई) नाथ ! वरुण, यम कुबेर, विवस्वान एव उनचासो मरुत् मिलकर भी जिसके समक्ष युद्ध म खडे होन का साहस नही करत थे ।

रावण (आँखें खोलकर) ठीक कह रही हो, मन्दोदरी। स्वय इन्द्र जिसके पाद पीठ की अचना किया करता था, वही रावण आज अपदाथ की तरह इस युद्धभूमि म पडा है। (पीडा से आखें मूद लेता है।)

मन्दोदरी कमलासन ब्रह्मा जिसकी सभा म प्रतिदिन वेदपाठ करने आते थे, जिसका भ्रू भग दखकर अग्नि भय से शीतल हो जाता था ।

रावण (पुन आँखें खोलकर, आकाश की आर देखकर) लकेश्वरी जिस रावण को क्रुद्ध देखकर मेघ अगारे बरसान लगते थे, उत्तुग तरगाकुल सागर अगुलि निर्देश मात्र स छाटे सरोवर की तरह

शान्त हो जाता था, उसी को आहत एवं भू-पतित देखकर ये देवता कितना आन द मना रहे हैं। (आकाश से जयजयकार का शब्द सुनाई पडता है।)

मन्दोदरी हा, नाथ! ये देवता ही हैं, जो राम की जय बोल रहे हैं।

रावण (ध्यान से सुनता है) बडे कायर हैं य देवता। काल को अब भी मेरे पास आने मे भय लगता है। यदि राम के बाण का अवलम्ब न मिलता, तो वह मेरी ओर आख उठाकर देख भी नही सकता था। (आँखें खोलकर चारो ओर देखता है।) क्या य मेरे सिर और बाहु हैं?

म दोदरी हाँ, देव! दिग्दन्तियो के दन्तोत्पाटन म समर्थ आपके प्रतापी बाहु आज गीधो के क्रीडनक बने हुए हैं। आकाश से भी उ नत आपके वे सिर, जो सूर्य और चन्द्र के आतपत्र से सेवित रहा करते थे, आज जम्बुको द्वारा ठुकराये जा रहे हैं। हाय!

रावण (धीरे से आँखें खोलता हुआ) म दोदरी! धैर्य धारण करो। काल को मैंने बन्दीगृह मे डाल रखा था, पर मैंने प्रमादवश वैसा नही किया। (आखे मूद लेता है)

विभीषण (रावण के चरणो पर सिर रखते हुए) भाई, अपराध क्षमा हो। काल जिनकी इच्छा से मर सकता है, आपने उ ही राम से अकारण वैर ठान लिया!

रावण (आखें खोलकर) तुम कौन, विभीषण?

विभीषण (रावण के चरणो पर सिर टेककर) हाँ, मैं ही हूँ भाई! अन्तिम दर्शन करने और क्षमा मागने आया हूँ। (आसुओ से रावण के चरण सिक्त हो जाते हैं।)

रावण तुम्हारे आने से मुझे बडी प्रस नता हुई, विभीषण! अब मेरे मन मे तुम्हारे प्रति किसी प्रकार का क्षोभ या रोष नही है। तुमने उच्चतर धर्म का पालन किया है। मैंने भी वीर धर्म का पालन करते हुए वीरगति पाई है। वीर का तर्पण आसुओ से नही होना चाहिए।

म दोदरी नाथ, विभीषण ने और मैंने आपको कितना समझाया, सीता को लौटा देने का कितना आग्रह किया। माल्यवन्त जैसे वृद्ध और विवेकी म त्रियो ने भी आपको इस अधर्म से विरत करने का प्रयत्न किया, पर तु आपने किसी की भी नही सुनी।

रावण ठीक ही कहती हो, म दोदरी! मैंने किसी की नही सुनी। मुझे अपनी अपराजेयता का अहकार था। दिक्पालो का मद चूर्ण

करने वाला रावण एक वनवासी राजकुमार राम की शक्ति को क्या समझता। परन्तु ।

मन्दोदरी परन्तु क्या नाथ?

रावण मन्दोदरी! मेरा अनुमान है कि राम की शक्ति का अधिष्ठान सीता ही है, व पुण्यतमा परमाशक्ति हैं।

मन्दोदरी यह अनुभव आपको कैसे हुआ?

रावण देवी मन्दोदरी! जीवन के इन अन्तिम क्षणो मे स्मृति अत्यन्त निमल और सतेज है, एक एक पूर्व घटित घटना सजीव होकर सामन आ रही है। सुनो, जब मैंने सीता का हरण करने के लिए उन्हे पकडा था, तब मुझे लगा कि मैंने प्रज्वलित अग्निशिखा को पकड लिया है। फिर भी ।

मन्दोदरी फिर भी आप उस अधम से विरत नही हुए?

रावण हा मन्दोदरी! फिर भी मैंने अपना निश्चय नही छोडा। प्रत्येक प्रकार के विरोध प्रतिरोध को पददलित कर देना रावण का स्वभाव था। एक अबला के प्रतिरोध से मेरे अहकार का दव और भी प्रदीप्त हो उठा। मैंने ज्वलन्त अनल शिखा-सी सीता को बलपूर्वक पकडकर अपने आकाशचारी रथ मे डाल दिया।

मन्दोदरी फिर?

रावण मैंने सीता को उठाकर रथ मे डाल तो लिया पर अपनी जिन भुजाओ पर मैंने शम्भु समेत कैलास को लीला कमल की तरह उठा लिया था, वे ही सीता को उठाने मे थक गई। मैंने अनुभव किया मानो मेरी अपराजेय शक्ति का अक्षय स्रोत सूख गया है।

मन्दोदरी यह अनुभव आपको कैसे हुआ?

रावण मन्दोदरी! सीता की पुकार पर अति जरठ जटायु गद्ध ने मुझ पर आक्रमण किया। उसने अपने भीषण नख-चचु प्रहार से मुझे मूर्च्छित कर दिया। बडी कठिनाई से मैं अपने शिव प्रदत्त कृपाण से उसे जीत पाया। अपनी शक्तिहीनता का वह पहला अनुभव मुझे हुआ था।

विभीषण फिर भी आपने हम लोगो के अनुरोध पर ध्यान नही दिया।

रावण अहकार विवेक का सबसे बडा शत्रु है, विभीषण! प्रबुद्ध विवेक के बिना राजशक्ति अन्ध और बधिर हो जाती है, उसे केवल चाटुकारिता ही प्रिय लगती है। मुझे इसका अनुभव हो रहा है। मेरे बन्दीजन

[लक्ष्मण का प्रवेश। सिर पर जटा, पूर्ण चन्द्र जैसा तेजोदीप्त मुखमण्डल, आयताकार अरुण नेत्र, प्रशस्त पीन वक्ष स्थल, आजानु विलम्बित भुजाएँ, तप्त स्वर्ण जैसा वर्ण, मत्त मृगेन्द्र जैसी चाल, हाथ मे धनुष, पीठ पर तूणीर कसा हुआ। विभीषण के पीछे कुछ हटकर खड़े होते हैं। विभीषण उठना चाहते हैं, पर वे संकेत से रोक देते हैं, जिससे रावण अपनी बात पूरी कर सके।]

रावण मेरी यौवनश्री को सुरागनाप्रार्थित कहकर अभिनन्दन करते थे। देव, दानव, यक्ष किन्नर, नाग आदि सब कुलो की कितनी ही राजकुमारियो का मैंने वरण किया और सबने मुझे पाकर अपना जीवन कृतकृत्य माना। पर यह मानवी सीता

मन्दोदरी हा, नाथ! मानवी सीता ने कभी आख उठाकर भी आपकी ओर नही देखा।

रावण मानवी सीता ने मेरे गर्व को खर्व कर दिया, मन्दोदरी! उसका हृदय जीतने के लिए मैंने क्या नही किया। साम, दाम दण्ड, भेद, छल कपट मन्त्रबल आसुरी माया आदि सब प्रयोग मैंने किये और सब व्यर्थ हो गये। मैं तो नारी के केवल कामिनी रूप से ही परिचित था, उसके इस अपराजेय रूप का साक्षात्कार तो मैंने मानवी सीता को देखकर ही किया। नारी इतनी निष्कलुष, इतनी पवित्र हो सकती है इसका अनुभव मुझे सीता को देखकर ही हुआ।

मन्दोदरी यथार्थ है नाथ! सीता को पाकर राम धन्य हुए लका की यह भूमि भी उसके चरण स्पर्श से पवित्र हो गई है।

रावण एक बात और सुनो। यह मैंने तुमसे कभी नही कहा। एक बार मैं राम का रूप धारण कर सीता को छलने के लिए चला। वह रूप धारण करते ही मेरी चित्तवृत्ति परिवर्तित हो गई, मुझे चतुर्दिक अपनी माता के दर्शन होने लगे। सत्त्वगुण का ऐसा उद्रेक मेरे अन्त करण मे हुआ कि मेरा तमोगुणी स्वभाव उसे सहन न कर सका। मैंने वह रूप छोड दिया। उस दिन जब मैं पूजार्थ शिव मन्दिर मे गया, तब भगवान ने मेरी पूजा स्वीकार नही की। उनकी भृकुटियो मे रोषपूर्ण भगिमा थी, जगज्जननी पार्वती के नेत्रो मे भी करुणा के स्थान पर विराग था।

मन्दोदरी अपने इष्टदेव को असन्तुष्ट देखकर भी आपका विचार नहीं बदला?

रावण मुझे तो अपने इष्टदेव पर क्रोध आया। मन्दोदरी, मैंने यह निश्चय किया कि यदि ये भी सीता को लौटा देने का आग्रह करेंगे, तो मैं इनसे लड़ूंगा।

मन्दोदरी भयानक! भगवान शंकर के प्रति ऐसी विद्रोह भावना!! ओह, मुझे लगता था, लंकादहन उन्हीं के रुष्ट हो जाने से हुआ है!

विभीषण भैया, लंकादहन करने वाले हनुमान तो ग्यारहवें रुद्र के अवतार हैं ही।

रावण जिस आग में लंका जली, वह वही थी, जिसका दर्शन मैं प्रतिदिन सीता के व्यक्तित्व के प्रभामण्डल में करता था। मैंने संवर्त्तक मेघों को वह आग बुझाने का आदेश दिया था, पर उनके द्वारा बरसाया हुआ जल उस आग के लिए घृत बन जाता था। (बोलते बोलते थककर आंखें मूंदकर मौन हो जाता है।)

विभीषण (खड़े होकर) भैया, कोशलपति राघवेन्द्र राम के अनुज लक्ष्मण आपसे भेंट करने पधारे हैं।

लक्ष्मण मैं चक्रवर्ती दशरथ का पुत्र, राघवेन्द्र राम का अनुज लक्ष्मण आपको प्रणाम करता हूं, लंकेश्वर!

रावण (ससम्भ्रम आंखें खोलकर) रामानुज लक्ष्मण! मेघनादजयी लक्ष्मण! स्वागत है आपका। इस युद्धभूमि में मेरे इहलौकिक जीवन के अन्तिम क्षणों में आप किस उद्देश्य से पधारे हैं? मैं क्या सेवा कर सकता हूं?

लक्ष्मण आपने दीर्घकाल तक त्रैलोक्य का शासन किया है। पूज्य अग्रज ने मुझे आपसे राजनीति की शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजा है।

रावण रामानुज, यह आपके अग्रज की उदारता है। उन्होंने मुझे आदर दिया है। किन्तु अब मेरी वाक्शक्ति क्षीण होती जा रही है मैं अधिक बोल नहीं सकता। थोड़े में अपने शासकीय जीवन के अनुभव का सार कहता हूं।

लक्ष्मण इस कृपा के लिए अनुगृहीत हूं लंकेश्वर।

रावण शासकवर्ग को विलासिता से दूर रहना चाहिए। प्रशासकीय केन्द्रों से विलासिता का उन्मूलन करना राजनीतिक सुख शान्ति और सुरक्षा के लिए अनिवार्य है। यदि शासकवर्ग विलासी बन गया और राजधानियां विलासिता के केन्द्र बनीं, तो पतन अनिवार्य है। लंका का और मेरा पतन विलासिता के अतिरेक के कारण हुआ।

लक्ष्मण चिरस्मरणीय है आपका यह निर्देश ।

रावण विलासी शासकवर्ग प्रमादी, अहकारी एव अदृढनिश्चय होता है। राजा को प्रमादी राजपुरुषो को किसी प्रकार का उत्तरदायित्व नही सौपना चाहिए । प्रमाद और अहकार राजशक्ति को भीतर स खोखला कर देते हैं । इसलिए, सदाचारी पुरुषो को राजशक्ति के सचालन के काय मे नियुक्त करना चाहिए ।

लक्ष्मण अनुगहीत हूँ, लकेश्वर !

रावण शासक को प्रजावग को सदाचारी एव सयमी बनाने का सतत प्रयत्न करना चाहिए। सदाचारी प्रजा ही राजशक्ति का दृढ आधार बन सकती है। केवल भौतिक समृद्धि स राष्ट्र किंवा राजशक्ति दीर्घकाल तक सुरक्षित नही रह सकती। मैंने इस सत्य का महत्त्व नही समझा, इसलिए मेरी यह दशा हुई। (हाँफता है)

लक्ष्मण आपको बोलने मे कष्ट हो रहा है, लकेश्वर !

रावण हाँ, रामानुज, अधिक बोल नही पाऊँगा। अपने अग्रज से एक बात और कह देना । शासको का सबस बडा शत्रु होता है चाटुकार का वग । राजपुरुषों को इनसे बचना चाहिए । लक्ष्मण ! आपके अग्रज स मैंने यह सीखा है कि विपक्ष की शक्ति चाहे जितनी बडी हो, पर विजय उसी को मिलती है, जिसके पक्ष मे धम होता है । इसलिए राजसत्ता को धममूलक होना चाहिए, अब मेरी ऐसी धारणा है। (थककर आखें मूद लेता है ।)

लक्ष्मण अब आप कष्ट न करे, लकेश्वर !

रावण एक बात आपसे और कहनी है। मेरे बाद जब विभीषण का राजतिलक करें, तो मन्दोदरी को ही प्रधान राजमहिषी का पद प्रदान करें। जिस प्रकार बालि की मत्यु के पश्चात तारा सुग्रीव की पटरानी हुई, उसी प्रकार मन्दोदरी विभीषण की पटरानी बनेगी । इस देश की परम्परा मे यह विहित है ।

लक्ष्मण आपकी इच्छा पूण होगी, लकेश्वर ! (लक्ष्मण प्रणाम करके चले जाते हैं ।)

दृश्य दो

[लंका के समरांगण में भगवान राम का शिविर। भगवान राम एक शिला पर समासीन हैं। सामने चरणों के पास लक्ष्मण और हनुमान बैठे हैं। दोनों की मुद्रा अत्यन्त गम्भीर है।]

राम लक्ष्मण! रावण ने सीता के विषय में जो कुछ कहा है, वह यथार्थ है। फिर भी सीता को अग्नि-परीक्षा देनी ही होगी।

लक्ष्मण (विकल होकर, राम के चरण पकड़कर) स्वामिन्! मैं आपका दासानुदास हूँ। मेरा यह विश्वास रहा है कि आप जो कुछ कहते हैं सो करते हैं, उसमें धर्म का सारतत्त्व निहित है। फिर भी, भगवती की अग्नि परीक्षा का औचित्य मेरी समझ में किसी भी प्रकार नहीं आता।

राम लक्ष्मण तुम यह तो जानते हो कि मेरे वनवास और लंका पर अभियान का एक महत्तर उद्देश्य भी है।

लक्ष्मण अच्छी तरह से जानता हूँ, प्रभु! आप अनावृतचरण दुर्गम पर्वतों, अरण्यों और समुद्रों तक को पार करते हुए समाज, सम्प्रदाय देश एवं काल निरपेक्ष सार्वभौम मानव संस्कृति और धर्म की प्रतिष्ठा कर रहे हैं।

राम हनुमान, इस सम्बन्ध में तुम्हारा क्या अभिमत है? मेरे लक्ष्य की प्राप्ति में तुम्हारा योगदान सबसे महान है।

हनुमान (हाथ जोड़कर) ऐसा न कहें स्वामी! हनुमान सेवा के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानता। हाँ, इतना समझता हूँ कि तातचरण सौमित्र ने जो कुछ कहा है, वह सत्य है। वानर, ऋक्ष और रजनीचरों जैसी असभ्य जातियाँ आपके सम्पर्क मात्र से उच्चातिउच्च संस्कारों से दीक्षित होकर आर्यत्व प्राप्त करती जा रही हैं। आपके दर्शन मात्र से देवत्व सुलभ हो जाता है, जीवन के समस्त ताप त्रास दूर हो जाते हैं।

राम प्रत्येक मानव अपरिमित दैवी सम्पत्ति का अधिष्ठान है। इन अन्तर्निहित शक्तियों के पूर्ण विकास का ही नाम है—आर्यत्व अथवा देवत्व। हमारे ऋषियों ने इसी धर्म और संस्कृति के प्रचार और प्रसार को विश्व को आर्यत्व प्रदान करना कहा है। मैं भी उसी मार्ग पर चल रहा हूँ।

हनुमान जानता हूँ, स्वामी ! अगस्त्य ने इस धम के प्रचार के लिए कितने कष्ट सहे हैं। उनके कितने शिष्यों और सहयोगियों का निशाचरों ने अकारण ही वध कर डाला है।

राम लक्ष्मण तुम अत्रि की पत्नी अनुसूया को जानते हो ? तुमने भी उनके विषय म सुना होगा, हनुमान !

हनुमान मैंने उनके दशन भी किये हैं, प्रभु ! वे ही महर्षि अत्रि की महाशक्ति हैं।

राम तब तो तुम यह भी जानते होगे, वे ही महर्षि के धम प्रचार की सबस बडी सहयोगिनी हैं। दक्षिण की, श्वापदो से भी अधिक भयकर और क्रूर जातियो मे सती धम की प्रतिष्ठा का काम वे ही कर रही हैं, क्योंकि सतीत्व ही सस्कृति और धम के विकास का मूलाधार है।

लक्ष्मण स्वामी, अगस्त्य के साथ रहकर अनसूया देवी ने जो कुछ किया है, उसस अधिक आपके साथ रहकर जननी मैथिली कर रही हैं। आप उन्ही की अग्नि परीक्षा लेना चाहते है ?

राम तात ! तुम जानत हो, सीता का और मेरा जीवनोद्देश्य एक ही है। सीता की अग्नि परीक्षा उस उद्देश्य की सिद्धि मे सहायक सिद्ध होगी।

लक्ष्मण प्रभु मैं जानता हूँ कि जननी जानकी और आप अभिन्न हैं। यह भी जानता हूँ कि आप मर्यादापुरुषोत्तम है फिर भी मैं आपके, अग्नि परीक्षा के प्रस्ताव का अनुमोदन नहीं कर पाता। मैं तो समझता हूँ कि सीता जैसी सती को अग्नि परीक्षा देने के लिए बाध्य करना अपने-आप म ही धम मर्यादा का उल्लघन है। इस सृष्टि का एक एक अणु परमाणु भगवती की पवित्रता का साक्षी है।

राम तुम्हारी भावना को मैं समझता हूँ लक्ष्मण ! परन्तु धम का माग कठोर होता है।

लक्ष्मण स्वामी, यह कठोरता आपकी कीर्ति के पूणचन्द्र के लिए अमाज्य कलक बन जायगी। सीता जैसी महासती के साथ आपका यह व्यवहार युग युग तक अक्षम्य माना जायगा। इसलिए आप अपना यह निणय त्याग दें प्रभु ! (चरणो पर गिरते हैं) उद्देश्य कितना भी महान् हो, इस कठोरता की तुलना मे वह नगण्य हो जायगा।

हनुमान मेरा भी यही निवेदन है, प्रभु !

राम (लक्ष्मण को उठाकर हृदय से लगाते हुए) धैर्य धारण करो तात! सीता की अग्नि-परीक्षा के संकल्प से विचलित होने की आवश्यकता नहीं। क्या तुम्हें अपने अग्रज के विवेक और चरित्र बल पर सन्देह हो गया है?

लक्ष्मण शान्तं पापम्!! यह कैसे सम्भव है, प्रभु?

राम लक्ष्मण! तुम सीता के प्रति मेरे अनुराग का कुछ अनुमान कर सकते हो। घनश्याम में विद्युत की भाँति सीता मेरे अन्तरतम में सतत विद्यमान रहती है।

लक्ष्मण सारा संसार जानता है, प्रभु के नेत्र स्वप्न में भी परनारी की ओर नहीं उठे। ऐसे पवित्र हृदय में भगवती के प्रति प्रेम का जो महासागर भरा है उसकी ऊर्मिमाला के दर्शन मुझे प्रभु के विरह-काल में होता रहा है। यह भी जानता हूँ कि आर्यों में बहुपत्नीत्व की जो कुप्रथा चल पड़ी थी, प्रभु ने उसे मिटाने के लिए एकपत्नीत्व की उदात्त परम्परा का प्रवर्त्तन किया है। यह भी जगज्जननी के प्रति प्रभु के अनन्य प्रेम का प्रमाण है।

राम लक्ष्मण, फिर भी तुम कहते हो कि लोक अग्नि-परीक्षा का उद्देश्य न समझकर सीता के प्रति कठोर व्यवहार के लिए मुझे लांछित करेगा।

लक्ष्मण सत्य है, प्रभु! लोक आपके उद्देश्य को नहीं समझेगा। वह तो केवल अग्नि परीक्षा की इस घटना को प्रत्येक युग में नारी पर पुरुष के क्रूर व्यवहार और अत्याचार के प्रमाण के रूप में स्मरण करेगा।

राम मेरा समस्त जीवन लोकाराधन के लिए अर्पित है, लक्ष्मण! मैं जानकी का तुमको तथा अपने-आपको भी लोक-संग्रह की वेदी पर बलि कर सकता हूँ। क्या वही लोक मेरे साथ ऐसा अन्याय करेगा?

हनुमान स्वामी लोक की मेधा और स्मृति दोनों ही अत्यन्त अल्प और सीमित होती है। महज्जनों के महत् उद्देश्यों को समझ लेना लोक के लिए प्रायः सहज नहीं होता।

लक्ष्मण प्रभु मैं ही आपकी अग्नि परीक्षा के वास्तविक अभिप्राय को अब तक नहीं समझ पाया हूँ। लोकमानस में युग युग तक इस घटना की उचित क्रिया प्रतिक्रिया ही होगी यह कैसे कहा जा सकता है?

हनुमान — तातचरण ठीक कहते हैं। हम लोग स्वय अब तक इसका उद्देश्य नही समझे हैं।

राम — आश्चर्य है, तुम लोग मेरा उद्देश्य नही समझे। लक्ष्मण, किष्किधा म तुमने सुग्रीव का राज्याभिषेक किया और बालि की पत्नी तारा उसकी पटरानी बनी। लका मे विभीषण का अभिषेक तुम्हारे ही हाथो होगा। तुम कहते थे, रावण की यह इच्छा थी कि मन्दोदरी ही विभीषण की पटरानी हो।

लक्ष्मण — सत्य है, प्रभु !

राम — सुनो लक्ष्मण ! आयनारी तारा और मन्दोदरी से भिन्न शील वाली होती है, इसे प्रमाणित करने के लिए सीता को अग्नि-परीक्षा देनी ही होगी। लका भोगवादी या त्रिक आसुरी सभ्यता का केन्द्र रही है। स्वच्छद, उन्मुक्त विलास ही इस सभ्यता म नारी के जीवन का उपयोग है। ऐसे परिवेश म नारी के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास सभव नही। भोगपरायण स्वार्थी पुरुष उसके केवल प्रमदा और कामिनी रूप की उपासना करके उसे प्रवचित करते हैं। वह केवल भोग्य बनकर रह जाती है, उसके मातृत्व, भगिनीत्व और पत्नीत्व का अमृत स्रोत सूख जाता है।

हनुमान — यथार्थ है प्रभु ! इन वानर ऋक्ष और यातुधान जातियो म नारी को उपभोग का अपरिमित अधिकार प्राप्त है। सतीत्व का सयम के कुछ सस्कार यहा उन्ही कुलवधुओ न डाले हैं, जो देव कुल अथवा आर्यकुल से अपहृत होकर आई हैं।

राम — क्या ऐसी नारी सीता की तरह वर्षों तक अनेक प्रकार की यातनाएँ सहती हुई भी अपने चरित्र की मर्यादा सुरक्षित रख सकती है ?

हनुमान — कदापि नही प्रभु ! इसीलिए जगदबा का चरित्र लका के समाज के लिए कुतूहल का विषय रहा है।

राम — मारुति, समाज के स्थिति-सम्पादन का मूलाधार है नारी का पवित्र शील, वही समाज की सुव्यवस्था और सुप्रगति का अमोघ साधन है। इसीलिए नारी के सात्त्विक शील का बहुमुखी पारिवारिक एव सामाजिक सम्बन्धो के रूप मे विकास हमारी सस्कृति म अभीष्ट रहा है। कामिनीत्व भी उसका एक उपादान हो सकता है, पर वह गौण है और उसकी सीमा से प्रत्येक भारतीय नारी परिचित है।

हनुमान — यह सत्य है, स्वामी !

राम चरम ऐहिक सभ्यता के अन्धकार में डूबे हुए इस प्रदेश में आर्य नारी के चरित्र के उदात्त आलोक के प्रसार के निमित्त सीता को अग्नि परीक्षा देनी ही होगी। सीता के परम निष्कलुष शील का साक्षात्कार कर यहाँ की नारियाँ भी उनका यह आदर्श अपनाने का प्रयत्न करेंगी। तभी इन समाजो और राष्ट्रो का कल्याण होगा। लंका विजय की यही सार्थकता है।

लक्ष्मण यह सब तो बिना अग्नि परीक्षा के भी सम्भव है। इसके लिए इतने निर्मम विधान की क्या आवश्यकता है, प्रभु?

हनुमान सुमित्रानन्दन ठीक कहते हैं, स्वामी! आपका जीवनादर्श तो आपके आगे आगे सभी समाजो और राष्ट्रो में प्रतिफलित होता चल रहा है। उसकी प्रतिष्ठा के लिए भगवती की अग्नि-परीक्षा का क्या औचित्य हो सकता है, मेरे प्रभु?

राम औचित्य है, हनुमान! मैं नर और नारी के जिस आदर्श और मर्यादा को प्रतिष्ठित करना चाहता हूँ, उसकी वेदी पर सीता को आत्मत्याग का यह उदाहरण प्रस्तुत करना ही होगा। मैं जाति, वंश, कुल, राष्ट्र-समाज सम्प्रदाय निरपेक्ष जिस आदर्श की सम्यक प्रतिष्ठा करना चाहता हूँ, उसी का नाम आर्यत्व है। यह आर्यत्व मानव मात्र का सहज स्वकीय धर्म है। इस सत्य की प्रतिष्ठा के लिए ही देवी जानकी ने इतनी यन्त्रणाएँ सही हैं। इसी के लिए उन्हें अग्नि परीक्षा भी देनी होगी। (कुछ देर ध्यान मुद्रा में अवस्थित होकर) कौन कह सकता है लक्ष्मण, भविष्य में देवी जानकी को तुमको और मुझे इस अग्नि परीक्षा से भी अधिक कठोर परीक्षा देनी पड़े।

लक्ष्मण प्रभु, देवी के लिए अब कौन सी परीक्षा शेष रह गई है? शिरीष सुमन और पाटल दल से भी अधिक सुकुमार चरणों से उन्होंने शूल संकुल कण्टकाकीर्ण दुर्गम मार्गों में हजारों योजन आपका अनुगमन किया है। अपने पातिव्रत के अनन्त अपरिमित तेज से उन्होंने कोटि कोटि चिताओं से भी अधिक दाहक राक्षसेन्द्र की यातना ज्वाला को विफल कर दिया है। उनकी अग्नि परीक्षा का विधान स्वयं अग्नि को भी सहन नहीं होगा, स्वामी! आप और हम कठोर से कठोर परीक्षाएँ देते रहेंगे पर भगवती नहीं नहीं, स्वामी!

राम मेरे उद्देश्य को समझने का प्रयत्न करो लक्ष्मण! लोक-कल्याण के लिए धर्म के लिए मैं इससे भी कठोर कर्म करूँगा। लंका की

विजय मानवता की जय यात्रा बने, इसके लिए जलती हुई अग्नि मे प्रवेश कर सीता को अपनी पवित्रता का प्रमाण लोक को देना ही होगा। इसकी सारी व्यवस्था तुमको करनी होगी।

लक्ष्मण प्रभु। मुझे । ओ ।

राम भीरु मत बनो लक्ष्मण ! इस कठोर कर्म द्वारा तुम्हे मेरे कलकित होने की आशका है। हो सकता है आनेवाले युग मेरे उद्देश्य को न समझकर मुझे क्रूरकर्मा ही कह, पर सीता तो शील और पावित्र्य का चरम प्रतिमान बन ही जायगी। राम भले ही सदोष माने जायें, पर सीता का चरित्र कोटि कोटि गगाओ से भी अधिक लोक पावन बन जायगा।

लक्ष्मण देव ! इस निमम विधान मे भी भगवती के प्रति आपका अनुराग व्यक्त हो रहा है। आपके विधान का रहस्य समझ सकना कठिन है।

राम मारुति ! तुम आदरपूवक देवी मैथिली को लका से ले आओ। विभीषण तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे।

हनुमान जो आज्ञा प्रभु ! समस्त वानर सेना भी जगदम्बा के दशन पाने के लिए आकुल है।

राम देवी मैथिली का यह बता देना।

दृश्य तीन

[स्थान अशोक वन। सुवण जैसे दीप्तिमान शिशपा-वृक्ष के नीचे निर्मित वेदिका पर देवी मैथिली अत्यन्त प्रशान्त मुद्रा म विद्यमान हैं। उनके दाहिनी और बायी ओर विभीषण की पत्नी सरमा और पुत्री कला खडी है। वेदिका के नीचे बहुत सी राक्षसियाँ हाथ जोडे हुए भय भीत एव त्रस्त बैठी हुई हैं। इनके लिए देवी सीता का दाहिना हाथ अभय मुद्रा म उठा हुआ है।

सरमा परमेश्वरी ! यह अशोक उपवन जो आपके नि श्वासो से स्तब्ध-दग्ध दिखाई देता था आज कितना प्रसन्न दिखाई दे रहा है ! मयूरो की केका म कितना आमोद है, आपकी वेदना की अनु-भूति से मूक बनी हुई कोकिलाएँ भी आज कितनी वावदूक हो गई हैं ! चातकियो की विरह व्यथा का भी मानो अवसान हो

गया है। आकाश में देव और देवांगनाओं के साथ-साथ इस उपवन के लता द्रुम भी आपके अभिनंदन में निरंतर पुष्प-वृष्टि कर रहे हैं। दिशाएँ प्रसन्न हैं, चराचर जगत् को आह्लादिनी का चरम प्रसाद मिला है। आप उठकर स्नान करें और दश वदन निधनकारी भगवान राघवेन्द्र के दर्शन के लिए तैयार हों।

कला राजराजेश्वरी ! आप मेरी माता की प्रार्थना स्वीकार करें और हम लोगों को प्रसाधन का अवसर दें। मेरे पिता आपके दर्शनार्थ आ ही रहे होंगे। वे आपको ससमारोहपूर्वक भगवान कोशलेन्द्र के पास ही ले जायेंगे।

सीता (दोनों को खींचकर हृदय से लगाते हुए) सखी सरमा ! तुम्हारे उपकारों का मैं क्या बदला दे सकती हूँ ? अशोक उपवन की इस काल में लिए भी दुर्गम कारा में तुमने प्रियतम के दर्शन की आशा बँधाकर अनेक बार देह का बाँध तोड़कर जाते हुए प्राणों को रोक रखा है। अनेक जन्मों में भी तुम्हारे ऋण से उऋण नहीं हो सकती।

सरमा देवी ! यह कहकर आप हमें लज्जित न करें। यदि सचमुच आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो मुझे यह वर दें कि मैं कोटि-कोटि जन्मों तक आपके चरणों की किंकरी बनी रहूँ।

आचन्द्रदिवाकर सौभाग्यवती और लंका की सम्राज्ञी बनकर रहो। मेरे हृदय के अनन्त मंगलमय भावोच्छ्वास इस अवसर पर तुम्हें अभिषिक्त कर रहे हैं। और यह बेटी कला ! (प्रगाढता से हृदय से लगाती है और सिर पर हाथ फेरती है।)

कला मैं तुम्हारी क्या सेवा कर पाई, सर्वेश्वरी !

सीता बेटी ! तुमने मुझे एक साथ माता का वात्सल्य और पुत्री का स्नेह दिया है। अत्यन्त दुःखी देखकर जब तू अत्यन्त करुण दृष्टि से मुझे निर्निमेष निहारने लगती थी, तब मुझे अपनी वात्सल्यमयी जननी सुनयना और अनन्त करुणामयी माता कौशल्या का स्मरण हो आता था। कभी मेरे प्रति किए जानेवाले रावण के अनाचार को देखकर तेरे मृगशावकी जैसे भोले नेत्रों में रोष रक्तिमा की लालिमा झलक उठती थी, तब मुझे वत्स लक्ष्मण की याद आ जाती थी। तू मेरे हृदय से बार-बार लगकर इसे शीतल कर। (नेत्रों से आँसू झरते हैं।)

सरमा इस लड़की ने न मालूम कितनी रातें आपके दुःख से दुःखी रह

कर, रो रोकर बिताई हैं और अपने पिता से निरंतर आपकी मुक्ति के लिए उद्योग करने का आग्रह किया है।

सीता — यह मैं जानती हूँ, सखी! और ये वृद्धा त्रिजटा, इनके उपकारो का अवशेष भार मुझ पर है। इन्ही की कृपा से मेरे जीवन मे प्रियतम के दर्शन का यह योग फिर आया है। माता त्रिजटा! आशीर्वाद दो! मेरा प्रत्येक रोम नेत्र बन जाय और मैं असख्य नेत्रो से आज राघवेन्द्र का दर्शन कर सकू।

त्रिजटा — (हाथ जोडकर राक्षसियो के बीच से उठ खडी होती हैं) मैं किस योग्य हू, सवमगले। (आँसू गिरने लगते हैं।)

[विभीषण और हनुमान का प्रवेश! विभीषण प्रसन्न हैं और हनुमान शान्त एव गम्भीर। दोनो भगवती जानकी के समक्ष प्रणत होते हैं। हनुमान को देखकर राक्षसियाँ भयभीत हो उठती हैं।]

सीता — (हनुमान से) मगल हो वत्स! (किंचित सकुचित सरमा को जिज्ञासा की दृष्टि से देखकर, फिर विभीषण से) स्वागत महा-भाग! लकेश्वर उत्तरोत्तर कल्याणभागी बनें।

हनुमान — माता! रावण रूपी कण्टक वन राघवेन्द्र के रोष की दावाग्नि मे दग्ध हो गया है। रावण रूपी गन्धहस्ती राघवेन्द्र के शौर्य के शार्दूल द्वारा विदलित कर दिया गया है। तीनो लोक जिस भय और आतक के कालानल मे दग्ध हो रहे थे, उसे भगवान राम के अनुग्रह के मेघ ने बुझा लिया है। आपकी विरह निशा के सुप्रभात का उदय हुआ है, आपके परम पुण्य-अनुष्ठान की सिद्धि की मगलवेला आ गई है।

विभीषण — देवी! लका आपके चरणो की धूलि धारण कर अयुतायुत तीर्थों से भी अधिक पवित्र हो गई है। इस धरती पर आपके द्वारा ससार का सबसे महान व्रत सम्पन्न हुआ है। मानवता के इति-हास की यह सबसे गौरवशाली घटना है। आपके अपराधी विश्वप्रपीडक लकाधिपति आपके निःश्वासो से दग्ध होकर रणभूमि मे क्षत विक्षत शयन कर रहे हैं। आप विश्वजयी राघवेन्द्र के दर्शन के लिए चलें, वे आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

हनुमान — माता! भगवान राम के माहात्म्य, उनकी पूजा, उनकी श्रद्धा और उनके मनोरथ को तत्त्व से समग्रत केवल आप जानती हैं। विभीषण लकेश्वर का निवेदन यथार्थ है। उन्हीं के आदेशों से मैं

आपको लेने आया हूँ। आप शीघ्र चलकर नवोदित पूर्ण चन्द्रमा के समान राघवेन्द्र का मुख देखें।

विभीषण राघवेन्द्र त्रिकूट पर्वत के शिखर पर ऐरावत पर समारूढ इन्द्र के समान शोभित हैं। समरांगण में प्रतापकालीन सूर्य के समान प्रकाशित होनेवाले प्रमत्त दिग्गजों के हृदय में त्रास उत्पन्न करनेवाले रावणजयी राम के पास चलकर आप उन्हें हर्ष प्रदान करें।

सीता वत्स आंजनेय! दूत के रूप में सुमन जो वचन मुझे दिये थे, वे पूरे करके ही तुम मेरे पास आये हो। मैं तुम्हें क्या दूं? तुम्हारे समक्ष मैं अपने आपको अतीव अकिंचना अनुभव करती हूँ। अंजना देवी की तरह मैं भी तुम्हें पाकर पुत्रवती हो गई हूं। भगवान राघवेन्द्र के नाम और यश की भांति तुम भी युग-युग अनाथों को सनाथ करते रहो।

हनुमान (हाथ जोडकर) जननी! मैंने आपसे जो कुछ कहा था, वह सब उसी प्रकार घटित हुआ है। भगवान राम ने महस्रों कोटि वानरों और ऋक्षों की सेना लेकर लंका को आक्रान्त कर लिया। इस सेना में ऐसा कोई वानर नहीं, जो बल और पराक्रम में मुझसे कम हो। आपके वियोगजन्य शोक से प्रमत्त बने हुए भगवान राम के बाणों ने ग्रहों की गति रोक दी और अग्नि, मरुद्गण तथा सूर्य का तेज भी नष्ट कर दिया। आपके लिए ही उन्होंने अपने धनुष की प्रत्यंचा से छूट हुए बाणसमूहों से आकाश को भर दिया, समस्त पिशाचों और राक्षसों का संहार कर डाला और विश्वजयी रावण को क्षुद्र कीट की तरह धरती पर सुला दिया। आप चलकर उनकी वह विरह ज्वाला शान्त करें। सुग्रीव की सेना के कोटि कोटि वीर भी आपके दर्शन के लिए उत्कण्ठित हैं। उन युद्धश्रान्तों को आपकी पुत्रवत्सला दृष्टि की अभिषेक अपेक्षित है।

विभीषण (सरमा से) भगवती को सम्राज्ञी के उपयुक्त वेष में राघवेन्द्र के निकट जाना है, उसकी व्यवस्था करो देवी! मैं शिविका लेकर आता हूँ।

सरमा जो आज्ञा।

सीता लंकापति! मेरे स्वामी शत शत योजन दुर्गम वन शैल संकुल भूमि एवं महासमुद्र पैदल पार कर मेरे उद्धार के लिए यहाँ आये

हैं मैं भी पैदल ही चलकर उनके दर्शन करूँगी। शिविका की अपेक्षा मुझे नहीं।

सरमा देवी! आपका यह शरीर प्राय एक वर्ष के निराहार से अत्यन्त ही कृश हो गया है, अब तक केवल तप ही आपका आहार रहा है। आप पैदल चलने योग्य नहीं रह गई हैं।

सीता शिविकारूढ होकर प्रभु के दर्शन के लिए जाने से मेरे व्रत की मर्यादा भंग होगी। मुझे इतना कष्ट और सहन कर लेने दो, सखी!

सरमा आपके व्रत ने इस धरती को दिव्य चेतना एवं नवीन जीवन दृष्टि प्रदान की है। लंका की चरम ऐहिक भोगपरायण सभ्यता की अमानिशा का आज अवसान हो गया है, आपका व्रत सुप्रभात बनकर उदित हुआ है। हम सब आपके दर्शन पाकर धन्य हैं।

त्रिजटा ठीक कहती हैं, देवी! लंकापति को आपके तप की अग्नि में पहले ही दग्ध हो जाना चाहिए था। वे इतने दिन जीवित रह सके, यही आश्चर्य है।

[हनुमान त्रिजटा की ओर देखते और पहचानते हैं फिर कठोर दृष्टि से अन्य राक्षसियों की ओर देखते हैं। राक्षसियाँ भयभीत होकर काँपने लगती हैं और हाथ जोड़कर सीता की ओर कातर दृष्टि से देखती हैं। उनमें से कुछ 'क्षमा करो, रक्षा करो' कहती हुई, दौड़कर सीता के चरणों में गिरती हैं।]

सीता (अभयमुद्रा में हाथ उठाकर) डरो मत, तुम्हें कोई भय नहीं। वत्स हनुमान! ये राक्षसियाँ रावण की आज्ञा से ही मुझे कष्ट देती थीं, इनका कोई दोष नहीं। ये तुम्हारे लिए क्षम्य हैं। इन्हीं में त्रिजटा जैसी परम सहृदया भी हैं जिनके स्नेहपूर्ण आश्वासनों से मैं अपना जीवन धारण कर सकी।

हनुमान जैसी आज्ञा, करुणामयी!

सीता रावण की ये परिचारिकाएँ आपस में तुम्हारे बल और पराक्रम की बराबर चर्चा करती थीं। तुम्हारे द्वारा विध्वंस किया गया रावण का यह प्राणोपम प्रमादवन और यह दैत्य प्रासाद देखकर इन्हें तुम्हारा स्मरण मात्र भयभीत करता रहता था।

त्रिजटा कपिप्रवर! हम तो तुम्हारे गर्जन से भी परिचित हो गई थीं। युद्ध में तुम्हारा गर्जन जब ब्रह्माण्ड को क्षुब्ध घटा की तरह दर-

काता हुआ चतुर्दिक् फैलता था, तब हम भगवती जानकी से कहती थी कि यह उसी लका को जलानेवाले वानर वीर का सिंहनाद है।

सीता (हनुमान से) त्रिजटा देवी ठीक कहती हैं। वत्स, तुम्हारे गर्जन से त्रस्त इन राक्षसियों ने अनेक बार मुझसे कहा है कि जब ये कपिराज विजयी होकर लका मे आवें, तो उस समय इनसे हमारी रक्षा करना। इन्हें अभय करो महावीर!

[राक्षसियाँ जयजयकार करती हैं]

हनुमान माता! आपने जिसे अभय किया, उसके लिए फिर त्रिकाल और त्रिलोक मे कोई भय शेष नही रहता।

विभीषण आपकी यह करुणाविभूति है। सृष्टि का परम अवलम्ब है भगवती! भगवान राघवेन्द्र की सेवा मे चलने का समय हो रहा है, महिमामयी!

सीता मुझे भी प्रभु के दर्शन के बिना एक एक क्षण युग हो रहा है। आप समुचित व्यवस्था करें, लकेश्वर!

विभीषण (सरमा से) देवी आवश्यक तैयारी शीघ्र करो। मुझे विश्वास है, मेरा आग्रह मानकर ये करुणामयी लका के बहिर्द्वार तक शिविका मे जायेंगी और उसके आगे अपने व्रत की रक्षा के लिए प्रभु के दर्शन होने तक पैदल चलेंगी।

हनुमान लकेश्वर का प्रस्ताव स्वीकार्य है, माता! इसमे आपके व्रत की रक्षा है और विभीषण की मर्यादा की भी।

विभीषण लका के बहिर्द्वार को पार कर जब भगवती पैदल चलेंगी, तब इनके दर्शन के लिए आकुल वानर और भालु सैनिक सनाथ हो जायेंगे। सरमा! शिविका भेज रहा हूँ तुम आवश्यक व्यवस्था करो।

[विभीषण और हनुमान जाते हैं।]

दृश्य चार

[स्थान लका की युद्धभूमि। जहा तक दृष्टि जाती है, युद्धभूमि मे वानर और भालुओं की सेना का प्रसार दिख पडता है। विजय दृप्त सैनिक हर्षनाद कर रहे हैं। त्रिकूट पर्वत के पाद प्रान्त मे स्थिर एक शिला पर भगवान राम

बैठे हैं। उनके सामने जाम्बवान सुग्रीव और अगद बठे हैं। नील, नल, जय आदि सेनापति उनके दायें-बायें खडे हैं। उनकी दाहिनी ओर सुमित्रानन्दन उतरे हुए धनुष के सहारे सिर झुकाये हुए खडे हैं। कुछ दूर पर काष्ठखण्डो का एक ऊँचा विशाल समूह आयताकार चुना हुआ दिखाई पड रहा है। लक्ष्मण बार-बार उद्विग्न-से होकर उधर देखते हैं। जाम्बवान हाथ जोडकर भगवान राम के सामने उठकर खडे होते हैं।]

राम — कुछ कहना चाहते हैं ऋक्षराज !

जाम्बवान — यदि आपकी आज्ञा हो, देव !

राम — आपके सैन्यबल और बुद्धिबल दोनो ने मुझे लकायुद्ध का महार्णव पार करने मे अप्रतिम अवलम्ब प्रदान किया है। मैं आपका ऋणी हू। आप जो कुछ कहना चाहते हैं अवश्य कहे, भल्लपति !

जाम्बवान — आपके शील स्वभाव की ही यह विशेषता है कि आप मुझ-जैसे क्षुद्र को भी आदर देते रहे हैं। आपने इस सकटकाल मे अपना राजमन्त्री बनाकर मुझे अपरिमित विश्वासभाजन माना। मेरी सभी मन्त्रणाओ को स्वीकार कर आपने मुझ वृद्ध को गौरवान्वित किया। यह सब आपकी उदारता है, राजराजेश्वर !

राम — महात्मन् ! विद्या और वय दोनो दृष्टियो से आप मेरे लिए पूज्य हैं। आप जैसे मन्त्रतत्त्व के मर्मज्ञ, शास्त्र और शस्त्र दोनो के अप्रतिम ज्ञाता, कार्यकुशल जितेन्द्रिय, तेजस्वी, क्षमाशील तथा सन्धि और विग्रह के सम्यक् उपयोग और अवसर को जानने वाले राजर्षि को मन्त्री के रूप मे पाकर ही मैं इस युद्ध मे लोक-द्वेषी पराक्रम और उत्साह की विजृम्भित अर्चियो वाले रावण रूपी ज्वालामुखी का शमन कर सका हूँ। आपके कथन को मैं शक्ति भर आदेश मानकर स्वीकार करूँगा, भल्लराज !

जाम्बवान — यह आपका परम अनुग्रह है, देव ! किन्तु, आज मैं आपसे जो कुछ कहने जा रहा हू, वह केवल मेरा व्यक्तिगत निवेदन नही है। वह कपीश्वर सुग्रीव, तरुण युवराज अगद, नल, नील, जय, गवाक्ष, द्विविद, शरभ आदि आपके सब मन्त्रियो और सेनापतियो का अभिमत है। मैं आपके समस्त सुहृदो और अनुयायियो का प्रतिनिधि बनकर बोल रहा हूँ।

सुग्रीव — कोशलेन्द्र ! ऋक्षपति हम सबका अभीष्ट निवेदन करेंगे।

राम — कपीश ! जो कुछ कहना हो, अवश्य कह । मैं जानता हूँ, ऋक्ष राज जनमत और साधुमत दोनो मे समन्वय करने मे कुशल हैं।

जाम्बवान — महाराज ! आपने मानव के वैयक्तिक, पारिवारिक एव समग्र सामाजिक जीवन को परम कल्याणकारी उच्चाति उच्च आदर्शों की मर्यादा म बाधा है। आपने हम सब दाक्षिणात्य वनौकसो का आयत्व प्रदान किया है और यह बतलाया है कि आयत्व किसी कुल, जाति, वर्ण, सम्प्रदाय, क्षेत्र या देश विदेश की वस्तु नही। वह सदाचारमूलक और आदर्शमय जीवन के उत्कर्ष पर अवलम्बित है।

राम — आयत्व का वास्तविक स्वरूप यही है, तात ! आपसे और हनुमान से श्रेष्ठ आयत्व का कोई अन्य प्रतिमान तीनो लोको म दुर्लभ है।

जाम्बवान — प्रभु ! आपने गार्हस्थ्य जीवन म एकपत्नीव्रत की महिमा प्रतिष्ठापित की। भ्रातृद्वेष से विपाक्त एव जजर किष्किन्धा और लका जैसे राजकीय एव अन्य अनेकानेक सामान्य परिवारो के समक्ष आपने भ्रातृप्रेम का अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत किया और यह बतलाया कि आदर्श भ्रातृत्व ही श्रेष्ठ पारिवारिक जीवन की आधारशिला है। किन्तु, आज आपने महासती देवी मैथिली की अग्नि-परीक्षा लेने का निश्चय कर अपने ही द्वारा प्रतिष्ठित आर्य मर्यादा का उल्लघन किया है। आपके इस निश्चय का अनुमोदन हम लोग नही करते, ससार का कोई सत्पुरुष नही कर सकेगा।

अगद — (आवेश मे) इक्ष्वाकुतिलक ! यद्यपि आपने मेरे पिता का वध किया था, फिर भी मुझे यह विश्वास हो गया था कि आप धर्म और न्याय के मूर्तिमान् विग्रह हैं। तभी मैंने आपके प्रति आत्म समर्पण किया था और आपका अनुयायी बना था। यदि ऐसा न होता, तो मुझे आपके बाण म वीरगति पाने म ही प्रसन्नता होती। किन्तु सीता देवी की अग्नि परीक्षा का निश्चय कर आपने स्वय सत्य और धर्म की मर्यादा का उल्लघन करने का प्रयत्न किया है। यह अन्याय और अधर्म हम देख नही सकते।

राम — (गम्भीरता से) युवराज अगद ! अधीर मत बनो।

अगद — राघवेन्द्र ! प्रेम जब तक अपनी मर्यादा म रहता है तभी तक वह वीरों का भूषण माना जाता है। हनुमान के चारित्र्य जैसी पूर्णता का प्रतिमान अन्यत्र तीनो लोको म कहाँ है ? राजराजेश्वर ! गम्य और अलभ्य के अप्रतिम धाता उन मारुति ने लका म

लौटकर हम लोगो से जो कुछ कहा था, अग्नि-परीक्षा का साक्ष्य उससे अधिक विश्वसनीय नही हो सकता।

नल-नील युवराज सत्य कहते हैं, सीता में निष्कलक शील का उससे बडा साक्ष्य और कोई नही।

जाम्बवान युवराज ! आजनेय न लका से लौटकर हम लोगो से जो कुछ कहा था, उसे आप कोशलेन्द्र से कहे।

अगद मैं क्या कहूँ, पितृव्य ! आप ही उसे कहे। आपकी वाणी से अनुमोदित होकर सम्भव है वह महाराज के द्वारा मान्य हो।

जाम्बवान वह मैं अनेक बार कह चुका हूँ। तुम्हारे अनुरोध से इस विशाल वानरवाहिनी के समक्ष फिर कहे देता हूँ। हनुमान ने कहा था—सीता का पातिव्रत, उनका शील-स्वभाव अनन्य और अभूतपूर्व है। जिस नारी का शील-स्वभाव आर्या सीता के समान होगा, वह अपनी तपस्या से तीनो लोको को धारण कर सकती है, अथवा कुपित होकर तीनो लोको को जला सकती है। हाथ से छू जाने पर अग्नि की प्रज्वलित शिखा भी वह काम नही कर सकती है, जो क्रोध दिलाने पर जनकनन्दिनी सीता कर सकती हैं।

नील उन्होने यह भी कहा था—तपस्या, सत्य भाषण तथा पति मे अनन्य भक्ति के कारण आर्या सीता अग्नि को भी जला सकती हैं, आग उन्हे नही जला सकती।

[सहसा बडा कोलाहल होता है। 'आर्या सीता की जय', 'मैथिली देवी की जय', 'जनकनन्दिनी की जय' का स्वर चारो ओर फैल जाता है। विभीषण प्रवेश करते हैं।]

विभीषण (अभिनन्दन कर) प्रभु ! आर्या मैथिली आजनेय के साथ आ रही हैं। वे लका के द्वार तक ही शिविका पर चढकर आई हैं। वहा से वे पैदल ही चलकर आ रही हैं। वानर भालु सेना मातृदर्शन का यह सुयोग पाकर हर्षविभोर हो जयजयकार कर रही है।

जाम्बवान तप से अत्यन्त कृश और शील सुकुमारी विदेह राजनन्दिनी पैदल क्यो आ रही हैं ? आपने राजकीय मर्यादा का उल्लघन क्यो होने दिया, लकेश्वर ! उन्होने लका के द्वार तक आकर शिविका का परित्याग क्यो किया ?

विभीषण मैंने जान-बूझकर यह अपराध नही किया, ऋक्षराज ! उन्होंने कहा, मेरे स्वामी सकडो योजन दुर्गम जल-स्थल पार कर मेरे उद्धार के लिए यहा आये हैं, मैं भी पैदल ही चलकर ही उनके

दशन करूँगी। उनके इस आदेश के समक्ष हमे विवश हो जाना पडा, महात्मन् !

जाम्बवान धय हैं वे !

अगद (आवेश स) कोशले द्र ने उ ही आर्या के शील की अग्नि परीक्षा की व्यवस्था की है। लकेश्वर ! देखिए वह चिता, जिसके निकट सुमित्रान दन नतमुख खडे हैं।

विभीषण यह मैं क्या सुन रहा हूँ, प्रभु ! क्या सूय के प्रकाश धम की भी परीक्षा होती है ? क्या अग्नि का ताप गुण भी स देह का विषय माना जा सकता है ? भगवती जनकन दिनी के शील की परीक्षा का विचार ही अत्यन्त अनाय कम है। यह क्या होने जा रहा है, आय लक्ष्मण !

लक्ष्मण मैं अनुगत पात्र हूँ, लकेश्वर !

[फिर सिर नीचा कर लेते हैं]

विभीषण अनुगत तो मैं भी हूँ, वीर शिरोमणि ! आर्या जानकी का अप्रतिम, निष्कलक, सूय, अग्नि, पवन और त्रिपथगा को भी पवित्र करने की क्षमता वाला शील देखकर ही मैंने अपने बडे भाई से विद्रोह किया था और कोशले द्र का अनुगामी बना था। मेरे अग्रज ने युद्धभूमि मे प्राण छोडत समय देवी मैथिली के सम्ब ध म जो कुछ कहा था वह आपने सुना है सुमित्रान दन !

लक्ष्मण वह सब मैं जानता हूँ लकापति !

विभीषण आय भी जानत है। फिर भी यह निमम विधान क्यो ?

राम लकेश्वर ! लका का युद्ध लोकहित सम्पादन के लिए लडा गया है लोकरुचि-सवद्धन के लिए नही।

विभीषण लोकहित क लिए देवी जानकी ने क्या नही किया और क्या नही सहा है देव ! उसके लिए देवी विदहराज न दिनी को अब अधिक कष्ट दना अनुचित है।

[हनुमान का प्रवेश]

अगद जाम्बवान, नल-नील और हम लोग भी यही कह रहे हैं लकेश्वर !

हनुमान (अगद से) आप लोग किस विषय को लेकर क्षुब्ध दिखाई दे रह हैं युवराज ?

अगद क्या आप नही जानते ? जिन भगवती जानकी के शील के प्रभाव

से रक्षित रहकर हम लोगो ने लका पर विजय प्राप्त की, उन्हे ही भगवान राघवेन्द्र ने अग्नि म प्रविष्ट होकर अपने शील की शुद्धता प्रमाणित करने का आदेश दिया है।

हनुमान यह मैं जान चुका हूँ युवराज !

अगद आश्चय ! फिर भी आपने इसका विरोध नही किया

हनुमान विरोध अवश्य किया ! पर

अगद पर क्या ?

हनुमान पर, मैं यह समझ गया हूँ कि प्रभु कोशलेन्द्र जननी जानकी का हृदय जानते हैं और वे इनका हृदय जानती हैं। वे कुछ क्षणो म यहा आ रही हैं, उनके आने तक हम लोग शान्त रह।

जाम्बवान ठीक है, हम लोग भगवती के आने की प्रतीक्षा करें।

हनुमान भगवती के प्रेम से आकृष्ट होकर वे सब राक्षसिया भी उनके पीछे पीछे चली आ रही हैं जिनको रावण ने उनकी आरक्षिका और प्रपीडिका के रूप म नियुक्त किया था।

विभीषण मेरे रोकने पर भी वे नही रुकी, चारित्र्यदेवता आर्या जानकी के अप्रतिम शील से उनका हृदय विजित है। कहती थी, वे उनके चरणो का अवलम्ब नही छोडना चाहती।

हनुमान उनकी एक प्रमुख आरक्षिका त्रिजटा कह रही थी, यौवन के उद्दाम उपभोगो की विराट राजधानी लका म जहा सतत उच्छृ खल, सदायौवना प्रखर रूपसिया ने जीवन भर वासना के उद्दीप्त दीप की तरह जलकर लकेश्वर को प्रसन्न करने मे अपना जीवन सफल माना था, वही इस मानवी सीता ने स्वेच्छा से असख्य त्यागो और कष्टो का वरण कर एक नया इतिहास लिखा है।

विभीषण यह सत्य है। वस्तुत , लका के हृदय को आर्या विदेहनन्दिनी ने जीता है। लका का जीवन अन्तमुख होता जा रहा है। लोग विषय-पराङ्मुख होते जा रहे हैं और अपने भीतर अब तक अज्ञात एव अनिवचनीय अन्तश्चेतना का अनुभव करते हैं।

जाम्बवान बन्धु ! हम लोगो की विजय तो उस विजय के समक्ष नगण्य है।

अगद आर्या की आरक्षिकाएँ आ रही है। उनके शील का सबसे बडा साक्षी और कौन हो सकता है ? क्या फिर भी भगवती के शील की अग्नि परीक्षा की आवश्यकता रह जायेगी ?

[कोलाहल बढता है। 'आर्या जानकी की जय', 'विदेह

राजनन्दिनी की जय' का आनन्द रव निकट सुनाई पड़ने लगता है।]

हनुमान (राम से) प्रभु ! देवी आ रही हैं।

राम आने दो

लक्ष्मण तात ! यदि आज्ञा हो तो, मैं आगे बढ़कर आर्या के चरणों की वन्दना करूँ।

राम जाओ वत्स (लक्ष्मण जाते हैं) (स्वगत) मुझे कष्ट और त्याग की पूर्णतमा प्रतिमा वैदेही के प्रति भी कठोर होना होगा। आह, दैव !

[पीड़ा से आँखें मूंद लेते हैं]

[लक्ष्मण हनुमान को साथ लेकर जाते हैं]

[कोलाहल बढ़ता है, एक शुभ्र आलोक मण्डल अवतरित होता हुआ प्रतीत होता है। वह धीरे धीरे निकट आता है, सीता देवी सामने आ जाती हैं—उनके पीछे लक्ष्मण और हनुमान हैं।]

लक्ष्मण (आगे बढ़कर) तात ! जिनके असहनीय वियोग में संसार के सभी पदार्थ आपके लिए दु:खजनक बन गये थे, वे विदेहराज नन्दिनी आपके समक्ष उपस्थित हैं।

राम देवी ! (कण्ठ भर आता है)

लक्ष्मण आर्या ! आपकी वियोग वेदना ने जाते जाते भी प्रभु का कण्ठावरोध कर दिया है। आपके विरह में वे अलौकिक धैर्य के कारण ही अब तक जीवन धारण कर सके हैं।

सीता आर्य पुत्र ! पुनर्जीवन प्राप्त कर मैं आपको प्रणाम करती हूँ। अमृतशलाका जैसी आपकी नील जलद छवि के दर्शन पाकर मेरे तप्त हुए नेत्र शीतल हो गये हैं। मेरा मुरझाया हुआ जीवन सुमन विकसित हो उठा है। प्रभु ! मुझे अपने चरणों में स्थान दें।

राम देवी विदेहराज नन्दिनी ! इक्ष्वाकु कुलकमले (चुप हो जाते हैं, मुख पर उदासी छा जाती है।)

सीता आर्य पुत्र ! आज्ञा दें। आप एकाएक चुप क्यों हो गये ? वनवास की अशेष यन्त्रणाओं के बीच सतत अम्लान रहने वाली आपकी मुखश्री आज इस अवसर पर मलिन क्यों हो रही है ? वत्स लक्ष्मण यदि तुम कुछ जानते हो, तो बताओ।

लक्ष्मण माता ! प्रभु के हृदय की बात आपसे अधिक और कौन जान सकता है ?

सीता वत्स ! प्रभु किसी असाधारण गम्भीर चिन्ता मे निमग्न प्रतीत होते हैं, वे किसी धर्म सकट मे हैं। क्या मैं प्रभु की चिन्ता दूर करने का कोई उपाय कर सकती हूँ ?

राम देवी ! चौदह वर्षों तक वन म अथवा बन्दिनी रहकर घोर कष्ट सहन करते हुए तुमने सर्वोच्च मानवीय आदर्शों की स्थापना के काय मे मेरे साथ सहयोग किया है। आज उस अनुष्ठान की पूर्णाहुति की वेला प्राप्त है। नारीत्व के सर्वोच्च आदर्श की प्रतिष्ठापना के लिए अन्तिम बलिदान शेष है।

सीता यदि वह पूर्णाहुति मेरे शरीर से भी सम्भव हो, तो मैं उसके लिए प्रस्तुत हूँ आर्यपुत्र !

राम देवी ! हृदय पर पत्थर रखकर मुझे यह व्यवस्था देनी पड रही है कि तुम प्रज्वलित अग्नि मे प्रवेश कर अपने शील की निष्कलकता प्रमाणित करो ! लोकहित के लिए यह विधान अनिवार्य है !

लका से आई हुई राक्षसिया (हाहाकार कर भगवान राम के समक्ष प्रणत होकर) महाराज ! यह घोर अन्याय है। य देवी वैदेही समस्त तीर्थों के जल और सकडो यज्ञो स भी अधिक पवित्र हैं। अग्नि के द्वारा इनकी पवित्रता की परीक्षा का विचार अनुचित है।

अगद इस साक्ष्य के पश्चात अग्नि परीक्षा का विधान धर्म का अपमान है।

राक्षसीगण महासती वैदेही के शील की पवित्रता प्रमाणित करने के लिए हम सब प्रज्वलित चिता मे प्रवेश करने के लिए तयार हैं। लका की यह धरती, यह आकाश, यह पवन, य सूय, चन्द्र, नक्षत्र, सागर की उद्वेलित ऊर्मियाँ सभी महारानी जानकी के पवित्र चरित्र के गान म निरत हैं।

सीता सखियो ! आप लोग शान्त रहे। मेरे स्वामी ने मानव धर्म की प्रतिष्ठा के लिए बाल्यावस्था म ही वनवास का पवित्र व्रत लिया था। धर्मवृद्धि और लोकहित के लिए ही उनका जीवन अर्पित है वे अनुचित नही कर सकते। उनके आदेश-पालन म सबका मगल है। वत्स लक्ष्मण ! अपने अग्रज की आज्ञा का पालन करो !

राम लक्ष्मण ! अग्नि प्रज्वलित करो। लोक के समक्ष वैदेही अपने शील की पवित्रता प्रमाणित करें।

[लक्ष्मण बिना कुछ बोले हुए काष्ठ-समूह के पास जाकर उसे प्रज्वलित करते हैं। अग्नि की, कालसर्पों की जसी लपलपाती हुई जिह्वा आकाश को ग्रसती हुई प्रतीत होती है। चारो ओर हाहाकार होता है। देवी सीता भगवान राम की परिक्रमा कर धीरे धीरे उस अनल समूह की ओर बढती हैं। सुग्रीव, जाम्ववान, अगद, विभीषण, अन्य अनेक सेनापति और सैनिक तथा लका से आई हुई राक्षसिया उनके सामने सिर टक देती हैं। वे उस प्रज्वलित अग्नि के निकट पहुँचकर ध्यानस्थ रहकर कुछ देर खडी रहती हैं, फिर बोलने लगती है।]

सीता अग्निदेव ! यदि मन, वचन और कम स मैंने पति की सेवा की है, तो तुम मेरे लिए शीतल हो जाओ। यदि मेरा हृदय एक क्षण के लिए भी राघवेन्द्र मे पृथक् न हुआ हो, तो सम्पूण जगत के साक्षी अग्निदेव मेरे लिए शीतल हो जायें। यदि मैंने मन, वाणी और क्रिया द्वारा सव धर्मों के मूर्तिमान विग्रह रघुवशशिरोमणि का कभी अतिक्रमण न किया हो, तो अग्निदेव मेरी रक्षा करें। यदि भगवान, सूय, वायु दिशाएँ, चन्द्रमा दिन रात, दानो सन्ध्याएँ, पृथ्वी देवी तथा अन्य सब देवता मुझे पवित्र चरित्र स युक्त जानते हो, तो अग्निदेव उसे लोक म प्रमाणित करें।

[यह कहकर वैदेही प्रज्वलित चिता की लपटो मे प्रवेश कर जाती हैं। ऐसा प्रतीत होता है उस अग्नि मे कामधेनु के घृत की अखड शुभ्र अपूत वसुधारा अर्पित की गई है। सहसा चिता तीव्रातितीव्र आलोक विकीण करती हुई अधिक वेग से प्रज्वलित हो उठती है। लक्ष्मण हनुमान, सुग्रीव, जाम्ववान अगद आदि भय और आशका स नत्र मूद लेते हैं। वानर, राक्षसियाँ और राक्षस आत्तस्वर स क्रन्दन करने लगती हैं। सहसा धरती के *अन्तराल स एक करुण ध्वनि सुनाई पडती है।*]

पृथ्वी रामभद्र ! सीता को जन्म देकर मैंने अपने को धन्य माना था। किन्तु उसका यह दुख अब मुझसे सहा नहीं जाता। वत्से ! सीते !

राम हा देवि ! नियति ने मुझे कुलिश मे भी कठोर बनाया है। किन्तु, मेरे भीतर जलते हुए दावानल को कौन देख सका है। सधि

स्थान टूट रहे हैं, शिराएँ विशीर्ण सी हो रही हैं। (आँसू गि
हैं।)

[सहसा वातावरण हिमशीतल हो जाता है। प्रज्वलि
चिता की लपटें प्रफुल्लित अरुण कमलो के रूप मे खिलती
हुई दिखाई पडती हैं। उसके बीच मे दिव्य कांति सम्पन्न
देवी सीता अम्लान खडी दिखाई पडती है। वे सूर्य की
भांति अरुण पीत कांति से प्रकाशमान हैं। प्रतप्त सुवर्ण
के आभूषणो से उनका दिव्य विग्रह शोभित है। सरमा
के द्वारा पहनाये गये उनके कण्ठ मे शोभा पाने वाले फूलो
के हार कुम्हलाये तक नही हैं। घन नीलालका सौदामिनी
की कांति को लज्जित करने वाली सीता देवी के चरणो
के निकट अग्निदेव विनीत भाव से सस्थित दिखाई पडते
हैं। आकाश से पुष्पवृष्टि होती है।]

अग्निदेव पुरुषोत्तम श्रीराम ! विदेह राजकुमारी के चरण स्पर्श से मैं पवित्र और शीतल हो गया हूं। इस महासती को जलाने का सामर्थ्य मुझमे नही। ससार की नि शेष पवित्रता इनके विग्रह मे मूर्तिमती है। आप इन्हे स्वीकार करें।

राम देव ! मैं जानता हूँ, विदेहनन्दिनी जानकी तीनो लोको मे परम पवित्र हैं ! मैं यह भी जानता था कि जिस प्रकार सागर अपनी तट-भूमि का उल्लघन नही कर सकता, उसी प्रकार रावण भी अपने ही सतीत्व के तेज से सुरक्षित सीता पर अत्याचार नही कर सकता था। ये तपोमयी सीता अपने तप के कारण परम दुर्द्धर्ष और मन से भी दूसरे के लिए अप्राप्य हैं। अनन्यहृदया जानकी मुझसे उसी तरह अभिन्न हैं, जैसे सूर्य से उनकी प्रभा।

[वानर सेना जयजयकार करती है। नील श्वेत आलोक
के तीव्र प्रसार के साथ पटाक्षेप होता है।]

कुरुक्षेत्र की एक साँझ



चन्द्रशेखर

स्वर

राधा
व्यास
यशोदा
कृष्ण
वसुदेव
कंस
अर्जुन
शिशुपाल
द्रौपदी
सुयोधन

दृश्य एक

[प्रभाव कुछ समय तक मुरली का मादक स्वर उभर कर मन्द पड़ जाता है और धीरे धीरे चलता रहता है। बीच-बीच में कभी उभर भी जाता है और पुन मन्द पड़ जाता है। पक्षियों का कलरव उभरता है तथा यमुना के बहने का प्रभाव भी । पुन मुरली का स्वर प्रधान रूप में उभरकर मन्द मन्द चलता रहता है।]

राधा एक युग बीत गया है कृष्ण ! मेरे कणु ! मेरे मोहन ! तुम्हे गए तुम्हे देखे जैसे अनेक कल्प हो गये हो ! तुम्हारी राधा की आखो म तुम्हारे शतरगी सपनो का अजन वैसे ही चमकता है । मन म तुम्हारे प्यार की केसर-गन्ध वैसे ही गमकती है ! कणु ! मेरे प्राण ! प्राणो मे तुम्हारे स्पश की मीठी गुदगुदी वैसे ही जगती है ।

[प्रभाव मुरली का प्रभाव पुन तेज होकर मन्द पड जाता है ।]

मुरली की मादक तरग ! मेरे भीतर से ही ज्वार बनकर मचलती यह रसधार ! मेरे से ही फूट रही है । राम रोम से फूट रही है । मैं ही वह मुरली हूँ । बिंधकर, छिदकर बिलख रही हूँ ।

[प्रभाव यमुना की छलछल करती लहरो का प्रभाव उभरता है और मन्द-मन्द पार्श्व मे चलता रहता है ।]

यमुना ! यमुना भी मेरे भीतर की बासुरी का व्याकुल स्वर सुनकर आदोलित हो रही है ! कणु ! यही है वह कदम्ब वृक्ष जहा तुम्हारे सग अनेक बार झूली हूँ तुम्हारी बाहो मे झूली हूँ यही हैं वे विपिन-वीथियाँ जहाँ मैंने अपना अथ पाया, यही हैं वे कुज निकुज, जहा मैंने तुम्हे नया अथ दिया । यही है वह वशीवट, जहाँ तुम्हारी मुरली की मादन ध्वनि सुन, मैं मन्त्र कीलित हिरणी की भाति बेसुध हो जाया करती थी । यही है वह पनघट, जहा तुमने न जाने कितनी बार मेरी गगरी फोडी । यही है वह रासभूमि, जहा से हमने जीवन को नया अथ दिया ।

सब कुछ वैसा ही है मेरे कणु ! वही है मोहन ! पर मैं ? मैं तो अब और भी अमूत हो गई हूँ, सूक्ष्म हो गई हूँ, तुम्हारे मे जो भावना बनकर मैं जगी थी अब भी वही भावना हूँ मैं भावना, जिसके पास स्वय जीने को एक शरीर था तब शरीर को भावना मिली थी, अब शरीर ही भावना हो गया है ।

[प्रभाव बादल धीरे धीरे गरजते हैं। गजन प्रखर होकर मन्द पड जाती है । पाश्व म उभरती रहती है ।]

गोवधन से घटाएँ उठ रही हैं। तब भी ऐसे ही घटाएँ उठी थी इसी कदम तले कान्ह ! मेरे कणु ! तुमने अपनी भाँवरी

मुझे ओढ़ा दी थी उसे ओढ़कर भी मैं अन्दर तक भीग गई थी वर्षा मे नही कृष्ण ! तुम्हारे स्पर्श मे वह सीलन अभी तक मेरे म है मैं उसे ही जीती हूँ, उसमे ही जीती हू।

[प्रभाव बादल गरजन का प्रभाव पुन उभरता है और साथ ही वर्षा का प्रभाव उभरकर साथ साथ चलता रहता है।]

राधा कान्हा ! मेरे कणु ! जब भी बादल घिरते हैं, मैं इस कदम तले आ जाती हूँ। वर्षा मे भीगती हूँ उसकी रस फुहार की मीठी बूंदे मुझमे से होकर बह जाती हैं ठीक वैसे, जैसे गोवर्धन की घाटिया म से तब तुम्हारे स्पर्श मेरे मे उगने लगते हैं, फूल बनकर महकने लगते हैं। मै खिल जाती हूँ। मुझम से तुम्हारी गन्ध मेरे साँवले मोहन ! तुम्हारी ग ध झरने लगती है ।

[प्रभाव वर्षा का प्रभाव पुन तेज होकर मन्द पड जाता है।]

कान्हा ! मैं भीग गई हूँ इस घनश्याम बदली को मैंने तुम्हारी काली कांवरी की तरह ओढ लिया है पर पर आज मेरे म तुम्हारे स्पर्श अगारो की तरह जलन लगे हैं। यह क्या कणु ! तुम्हारी छुवन मेरे मे चिनगारियां छोड रही हैं। मोहन ! मैं सुलगने लगी हूँ। मेरे मे से तुम्हारा दिया यह कौन-सा अर्थ फूटने लगा है?

ओह ! कृष्ण ! कृष्ण ! मेरे माथे पर यह फफोला कहा से आ गया? मेरे हाठो से धुआँ? सारे चेहरे पर छोटे छोटे छाले ! तुम्हारी दृष्टि का स्पर्श जहाँ भी पडा था वहाँ जलन !

कान्हा ! मुझम यह कैसा ग्रहण ! आज इस राशि म यह कौन ग्रह मेरे मे चढ आया है? जो मुझे ही ग्रस रहा है ! मुझे ग्रहण लग गया है ! मेरी भावना को ग्रहण लग गया है !

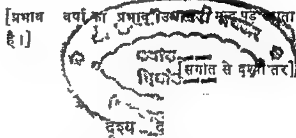
[प्रभाव वर्षा का प्रभाव पुन तेज होकर मन्द पड जाता है।]

जैसे मेरे में गन्धक उबल रही हो ! तेज धुआ उठकर मेरे मस्तिष्क म चढ रहा हो ! कान्हा ! कान्हा ! मेरी आँखो म

धुआँ घिर रहा है ! धुआँ घिर रहा है ! मुझे कुछ भी तो दिखाई नही पड रहा है   कुछ नही दीख रहा   !

सूय ग्रहण से पूव ही यह कैसा ग्रहण ! कैसा ग्रहण ! का हा ! तुम तो कुरुक्षेत्र म सूय-ग्रहण पर आ रहे हो ! सोचा था बूढे नन्द यशोदा के साथ मैं भी कुरुक्षेत्र जाऊँगी   कल जाने से पहले मैं यहाँ कदम तले भीगने चली आई   चाहती थी। इस बदली मे भीगकर गगा धुले तुलसी पत्र की भाँति तुम्हे समर्पित हूँ।

[प्रभाव   वर्षा का प्रभाव उभरकर मन्द पड जाता है।]



[प्रभाव   यात्रीदल के जाने का प्रभाव उभरता है, रथो, गाडिया के चलने का प्रभाव   बीच-बीच मे जन कोलाहल का प्रभाव   बैलो की घण्टियो की आवाज, ये सभी प्रभाव काफी देर उभरकर विलीन हो जाते हैं।]

[कुरुक्षेत्र मे ग्रहण के प्रभाव को व्यक्त करने के लिए जन-कोलाहल, घटिया, घडियाला, शखो का प्रभाव उभरता है।]

व्यास   (गाकर) धमक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सव ।
मामका पाडवाश्चैव किमकुवत सजय ॥
धमक्षेत्रे   ये शब्द पुन उभरकर विलीन हो जाते हैं।

राधा   कुरुक्षेत्र आ गया है   का हा ! तुम्हारा कुरुक्षेत्र आ गया है तुम्हारी कमभूमि आ गयी है
माँ ! यशुदा माँ ! तुम्हारे गोपाल की कमभूमि आ गयी है   !

यशोदा   मैं पहले ही जान गई थी   मेरे म एक पुलकन कब से जाग रही है। हृदय म दूध का स्रोत उमड रहा है।

व्यास   (गाकर) पाचज य हृषीकेशो देवदत्त धनजय ।
यह पक्ति दो-तीन बार उभरती है।

[प्रभाव   शख ध्वनि उभरती है।]

राधा मां ! यह कर्मक्षेत्र तुम्हारा लाडला नटखट कृष्ण ही है   इस कर्मभूमि म उसने बांसुरी छोडकर पाचजन्य शख फूका था ।

यशोदा राधा ! कैसा हो गया होगा मेरा श्याम ? कैसा लगता होगा ? उसे ही एक बार देखने के लिए इन आंखो को संभाल यी   पर अब तो दृष्टि ही मन्द पड गई है।

राधा मां ! मेरी आंखो म कभी काला परदा उतर आता है और कभी सफेद । सब धुधला ही धुधला

व्यास (गाकर) पश्य मे पार्थ ! रूपाणि शतशोऽथ सहस्रश ।
नाना विधानि दिव्यानि नाना वर्णाकृतीनिच ॥

हे अर्जुन ! मेरे हजारो रगो और रूपो को देख !

राधा मां ! सुना अपने कन्हैया का रूप   हजारो रग   हजारो रूप यह व्यास गीता गान कर रहे हैं   कृष्ण की कर्मभूमि म कृष्ण गीता का गान कर रहे हैं।

यशोदा हां ! गीता गान कितना मीठा है   तुमसे न जाने कितनी बार सुन चुकी हूं   ? हर बार नये अर्थ बताए हैं तुमने   हर बार नये अर्थ   । पर मैं तो उसका केवल एक ही रूप जानती हू बाल गोपाल का, नटखट उद्दण्ड का।

राधा हां मा !

यशोदा एक बार बचपन म कान्ह को मिट्टी खाते हुए मैंने पकड लिया जब उसने मेरे सामने मुह खोला   तो   तो जानती हो मैंने क्या देखा ? जानती हो ?

राधा नही मां !

यशोदा मैंने कान्ह के मुह म त्रिलोकी देखी   तीनो लोको की माया पर दूसरे ही क्षण मैं सब भूल गई   सब भूल गई   ।

राधा   ! इतना बडा मेला जुडा है यहां   तुम्हारे नन्द बाबा की आंखें भी रह गई हैं   हम अकेले   कृष्ण को यहा कहा ढूंढेंगे   कहा कहा ढूंढेंगी ?

[प्रभाव   घोडो की हिनहनाट के साथ साथ रुकने का प्रभाव ।]

कृष्ण मैय्या ! मैय्या ! मैं स्वय आ गया हूं   स्वय आ गया हूं मैय्या !

यशोदा मेरा गोपाल ! मेरा मोहन ! मेरा माखन चोर ! कहाँ है रे तू ? किधर है तू ?

कृष्ण (गद्गद स्वर में) मैय्या ! मैय्या ! मेरी मैय्या !

यशोदा तू गले से लग गया है... वर्षों से जल रहा... उपले की भाँति सुलग रहा मन शान्त हो गया है... (सिसकते हुए) तू इतना निर्मोही कैसे हो गया रे ? हूँ !... बोल रे निठुर ! बोलता क्यों नहीं !

कृष्ण मैय्या ! तुम्हारी गोद में अपार शांति मिल गई है... एक मीठी पुलकन जग रही है... थके टूटे प्राणों को नयी शक्ति मिल गई है मय्या ! मुझे पता था मैय्या तुम आओगी ! मैं कब से इस पथ पर खड़ा तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था मैय्या।

[प्रभाव... यशोदा की सिसकी उभरती है।]

मैय्या ! तुम रो रही हो ! मैय्या ! मैय्या !

यशोदा सूखी तलैया-सी आँखों में पता नहीं कहाँ से आँसू उमड़ आए हैं... ? सब धुंधला है... ! तुम्हें पूरी तरह कहाँ देख पा रही हूँ... ? केवल अनुभव ही कर रही हूँ... या हाथों से टटोल रही हूँ तुम्हें... ! हाथों से देख रही हूँ... !

कृष्ण मैय्या ! अपने स्नेह-भरे हाथ से मेरे रोम रोम की थकान हर लो... ! मैं तुम्हारी ममता के स्वच्छ अमृत कुण्ड में नहा रहा हूँ मय्या ! मैं नहा रहा हूँ !

यशोदा यह क्या रे ? तुम्हारे कोमल माखन से शरीर को क्या हो गया है ? सूख गया है ? पत्थर हो गया ? पिंजर निकल आया है ? रुक्मिणी सत्यभामा, वृन्दा... किसी ने भी तुम्हारी चिन्ता नहीं की ? करती भी क्यों ? तुम किसी एक का होते तब न ? मेरी राधा साथ होती... तो क्या तुम ऐसे होते ? बोलो... ! बोलते क्यों नहीं ? तब क्या तुम ऐसे कंकाल बन जाते ? राधा ! ओ राधा !

कृष्ण मय्या ! राधा आई है न ? बोलो मय्या। आई है न राधा !

यशोदा अपने विश्वास से पूछो ! राधा ! वह माखन ले आओ ! मिश्री भी ! राधा ! राधा ! कहाँ चली गई ? अभी यहाँ थी मेरे पास ! राधा !

कृष्ण मैं उस मानिनी को जानता हूँ मैय्या ! मैं अभी आया... अभी आया मैय्या !

[संगीत से दृश्यान्तर]

दृश्य तीन

[प्रभाव जन कोलाहल उभरकर काफी दर चलता है और फिर धीरे धीरे शात हो जाता है।]

राधा भीड के रेलो मे न जाने कहाँ पहुँच गई हूँ ? पैर धरती पर लगते ही नही न मेरी कोई दिशा है न कोई गति भीड ही मेरी दिशा और गति है मय्या चिन्तित हो रही होगी और माहन !

कृष्ण मोहन तुम्हारे पास खडा है तुम्हारे पास खडा है तुम्हारा मोहन

राधा मेरा माहन ? हूँ ! किस किसका माहन ?

कृष्ण सबका मोहन सबका होकर सब मे से तुम्हारा मोहन मात्र तुम्हारा नही तो केवल अपना, नही अपना ही नही अपना ही नही समझी ? मानिनी ! ओ मानिनी ! चलो ! चलो !

राधा मुझे कहा लिये जा रहे हो कणु ! कहा लिये जा रहे हो ? मुझे छुओ मत कणु ! छुओ मत ! तुम्हारे स्पश मेरे मे आग बनकर दहक रहे है मुझे ग्रहण बनकर भस्म कर रहे हैं मेरे स्पश तुम्हे ग्रहण बनकर न निगल जाएँ ! मोहन ! कणु ! छोड दो मेरा हाथ !

कृष्ण राधा ! तुम्हे वहाँ लिये जा रहा हूँ, वहा जहा मुझे ग्रहण लगा था युग छाया का ग्रहण लगा था मैंने सक्रमण का विषपान किया था वह ग्रहण अब तक मुझे लगा है उसी से मुक्त होने के लिए मैं यहा आया हूँ राधा ! लोग सूय ग्रहण पर कुरु क्षेत्र मे स्नान कर पावन होते हैं। राधा ! राधा ! मेरा कुरुक्षेत्र तुम हो ! तुम हो तुम्ही हो राधा ! राधा तुम्ही हो !

राधा मैं तुम्हारा कुरुक्षेत्र हूँ ?

कृष्ण हा राधा ! एक कुरुक्षेत्र यह है, जहा तुम खडी हो। मैं खडा हू। और एक कुरुक्षेत्र मेरे भीतर है वहा भी तुम हो मैं हूँ वहाँ भी एक महाभारत हुआ था दोनो महाभारत मेरे म हुए हैं मेरे म हुए हैं राधा उनको मैंन अपन ऊपर लिया है !

राधा कणु ! मैं भावना हू तुम्हारे ही शब्दो म भावना हूँ तुम्हारी इन बातो की गहराई क्या जानू। देख नही रहे मेरी दृष्टि मन्द पड गयी है है ही नही कभी आँखो म सफेद अँधेरा तैरता है और कभी काला मगर अब तो सब काला ही-काला है एकदम काला है !

कृष्ण पूर्ण सूर्य ग्रहण लग गया है सूर्य मर गया है भस्म हुआ उपला बन गया है दिशाओं की काली कनातों पर अँधेरे का वितान बन गया है काला पूरे का पूरा काला ।

राधा कृष्ण ! मैं तुम्हें देख भी पाऊँगी ? बोलो कृष्ण !

कृष्ण अवश्य तुम मात्र भावना ही नहीं भावना ही होती तो बह गई होती तुम अपने में खड़ी हो टिकी हो मात्र भावना अंधी होती है तुम्हारे पास विवेक की आँखें हैं वे खुलेंगी अवश्य ही खुलेंगी वे अब भी खुली हैं।

राधा मुझे सब कुछ काला ही दीख रहा है।

कृष्ण ठीक ही तो है तुम्हारी आँखों में ग्रहण उतर आया है यह ग्रहण सूर्य ग्रहण तुम्हारा ग्रहण अवश्य उतरेगा कटेगा टूटेगा तुम्हारे ग्रहण को भी मैं अपने ऊपर लूँगा राधा ! तुम्हें सब काला ही दीख रहा है ? राधा वह सब मैं हूँ मैं काला पड़ गया हूँ राधा! स्मरण है तुम्हें ? मैं कालियनाग की फुफकारों से बचपन में ही श्याम पड़ गया था ?

राधा कृष्ण ! यह पूछकर तुम मुझे कितना छोटा कर रहे हो ?

कृष्ण नहीं, मैं स्वयं छोटा पड़ा हूँ राधा ! हाँ ! सुनो ! वह केवल कालिय नाग नहीं था, उस छोटे से ग्राम खण्ड का विष था संक्रमण का विष जो मुझे ग्रस गया था वह मेरा पहला ग्रहण था जन पीड़ा का ग्रहण ।

राधा (ठोकर लगने पर चीखते हुए) उई !

कृष्ण राधा ! क्या हुआ ? ओह ! इस शिलाखण्ड से ठोकर लगी है ? खून निकल आया है रुको राधा ! अभी कुछ लगाता हूँ

राधा नहीं । कुछ नहीं । केवल मेरी भेजी औषधि ही मेरे लगा दो।

कृष्ण तुम्हारी भेजी औषधि ?

राधा हाँ ! जो नारद के हाथ भेजी थी। तुम्हारी शिरोपीड़ा के लिए ।

कृष्ण ओह ! वह औषधि ? तुम्हारे चरणों की धूल ! राधा ! जानती हो न मैंने कितना युग विष पीया है परिवर्तन के रथ चक्र को अपनी छाती पर लिया है संक्रमण के विषनाग का डंक सहा है इस पीड़ा से मुक्ति पाने के लिए तुम्हारी चरण धूलि की आवश्यकता पड़ी भावना के शीतल चन्दन लेपन से मेरे माथे में डंक चला रहा विष-सर्प मर गया ।

राधा हाँ ! वही मुझे लौटा दो !

कृष्ण मै फिर सक्रमण के विष से काला पडने लगूगा मन्द पड चुकी आग पुन धधकने लगेगी मेरी नसें मेरी शिराएँ फट जाएगी राधा फट जाएँगी !

राधा कणु ! मुझसे चला नही जाएगा यही थोडी देर रुक जाओ कणु ! हा ! वह मेरी वैरिन सौतिन कहा ? वह बासुरी कहाँ है ?

कृष्ण राधा ! वह तो व्रज मे ही छोड आया था उसका स्थान शख न ले लिया है मुरली का भी एक समय और स्थान था और वह था व्रज तक ही वही मुरली शख का जयघोष करने लगी। मुरली ही शख बन गई है।

राधा तुम एक बार भी व्रज क्या नही आए मोहन ! मथुरा की वह कुबडी कैसे भा गई तुम्ह ? कभी नन्द बाबा, मा यशोदा का स्मरण नही हुआ तुम्ह ? वे गउएँ, ग्वाल बाल, सखा सगी और मैं मैं मोहन ! क्या कोई भी तुम्ह याद नही आया ! मैं भी नही ! बोलो कान्हा !

कृष्ण राधा ! मैं तुम्हारे लिए एक अनुभव हूँ। सभी के निकट रहने वाला अनुभव। मैं मात्र अनुभूति हूँ, मुझे शरीर नही मिला है।

राधा तुम स्वय कितने निठुर निकले ? हूँ ! आ निर्मोही ! तब के अब मिले व्रज आने को एक बार भी मन नही हुआ। वह रँभाती गउएँ किलकारते बाल गोपाल, यमुना के कछार किसी के भी आकर्षण न तुम्हारे मन को आन्दोलित नही किया।

स्वार्थी कहाँगे ! जो पूछू, मेरा तनिक स्मरण भी तुम्ह नही हुआ ! हूँ ! बोलो नागर !

कृष्ण राधा ! तुम जसे एक सूक्ष्म शुद्ध भावना हो, मैं भी वसे ही एक अनुभव मात्र हूँ मात्र अनुभव सब के निकट एक अनुभव मैं हर स्थान-सम्बन्ध से आगे ही बहा हूँ वहाँ की मिट्टी की गध अपने मे सँजोए मैं निठुर निर्मोही हूँ तो केवल अपने प्रति, केवल अपने प्रति राधा ! और तुम मेरे म हो एक शीतल सुखद स्पदन बनकर भर मन के रसातल म, तलातल म समाई हो राधा !

तुम्हारे साथ बिताया प्रत्यक क्षण मेरे मे जीवित है वही मेरे मन मे वृन्दावन की तरह लहराता है मैं तुम्हें सदा उसी म पाता हूँ।

राधा	कृष्ण ! एक वृन्दावन मेरे मन में भी है, जहाँ मैंने तुम्हारे संग जो क्षण रोप लिये हैं... अब वे कमल-पुष्प बनकर खिल उठे हैं। कान्हा ! ओ कान्हा ! स्मरण है ? स्मरण है तुम्हें अपने मिलन का वह प्रथम क्षण !

[प्रभाव... संगीत उभरकर मंद मंद चलने लगता है।]

कृष्ण	(गद्गद स्वर में) अरे वाह ! तब तुम इत्ती छोटी थी। गुड़िया सी गोरी चिट्टी चिकनी। बड़ी-बड़ी आँखों में लपालप काजल, वेणी में बँधे पीत कनेर पुष्प... लाल ओढनी।

राधा	तुम भी तो इत्ते छोटे थे... मोर मुकुट... पीताम्बर... वनमाला... बाँसुरी... पूरे नटखट...।

कृष्ण	मैंने पूछा था... (हँसते हुए) अरी ओ अहीरन की छोरी ! कौन है री तू ? किसकी बेटी है ? कहाँ रहती है ? पहले तो कभी देखी नहीं !

राधा	(हँसते हुए) मैंने भी तुनककर कहा था... ओ गूजर के छोरे ! अरे मैं तो तुम्हें जानू हूँ... रोज ही तो सुनती रहती हूँ... नन्द के नटखट छोरे की बातें।

कृष्ण	(हँसते हुए) हम नटखट हैं ? तेरी कौन सी चुटिया काटी है हमने ? हूँ... हम भी तो जानें तू कौन है ?

राधा	(हँसते हुए) अरे तू नन्द का बेटा है तो मैं भी वृषभानु की बेटी हूँ, बरसाने की गूजरी हूँ।

कृष्ण	(हँसते हुए) और हम गोकुल के अहीर।

[प्रभाव... दोनों मिलकर बहुत देर तक हँसते हैं। संगीत का प्रभाव उभरकर मंद पड़ जाता है।]

राधा	तुम थे भी कितने शरीर ! सच कृष्ण ! तुम्हारी शरारतों के स्मरण से रोमांचित हो उठती हूँ... एक बार तुम्हारे घर आई थी... तुम... तुम गाय दूह रहे थे... मुझे देखते ही तुम्हारी शरारती आँखें नाच उठी थी।

कृष्ण	(हँसते हुए) अरे हाँ, राधा ! तू तो महा ठगनी थी... आई थी... हमें अपने रूप से छलने... हमने भी वह घात लगाई... वह घात लगाई दूध की धारा तुम्हारे पर बरसा दी।

राधा	(हँसते हुए) हाँ कान्हा ! तुम एकटक मुझे अपनी आँखों से बाँध रहे थे... एक धार दुहनी में और एक मेरे पर... मैं... दूध में धुल गई थी

कृष्ण (हँसते हुए) दूध मे घुली चाँदनी-सी लग रही थी।

[प्रभाव दोना का मधुर हास्य कुछ देर उभरकर मन्द पड जाता है। राधा हँसती रहती है परतु कृष्ण का हास्य बीच मे ही रुक जाता है।]

राधा (चौककर) श्याम ! कान्ह ! तुम अचानक गम्भीर क्यो हो गए ? बोलो श्याम !

कृष्ण राधा ! कितने वर्षों बाद ऐसे हँसा हूँ खुलकर, उन्मुक्त होकर गदगद भाव से, मथुरा, हस्तिनापुर, द्वारिका, कुरक्षेत्र यहा आकर मैं कब हँस पाया ? आज तुम्हारे साथ बीते क्षणो को पुन जीते हुए लगता है मुझमे प्राण शक्ति का पुन ज्वार जग आया है। नसो मे जो गाठें पडी थी, वे खुल रही है।

राधा मुझे भी ऐसा ही आभास हो रहा है। मानो मेरे मे जमा मेरा शाप, मेरा ग्रहण हिमशिला सा पिघलने लगा है। वह मेरे मे घुल रहा है अब मानो वह सिमट सिमटकर बाहर बह जाएगा।

कृष्ण राधा ! तुम्हारे आगे खुलकर ही मेरा ग्रहण भी उतरेगा। तुम मेरे आत्म विसजन की भूमिका भी रही हो, तुम्ही तो मेरी मुक्ति का धरातल हो।

और मैं ! मैं एक सकल्प, एक विनियोग हूँ। ऐसा सकल्प विनियोग, जिसका जन्म ही किन्ही दुष्ट ग्रहो की छाया मे हुआ है। राधा ! मैं जन्म से अब तक सघर्षों के अग्नि-कुण्ड म आहुति बनकर जला हूँ हविष बनकर उसमे विसर्जित हुआ हूँ।

अपने विगत जीवन के भयानक सघर्षों का स्मरण कर मैं और भी काला पड जाता हूँ पर आज सघर्ष के शिखर से अपनी लम्बी यात्रा सत्रासपूर्ण यात्रा-पथ और पडावो का दर्शन कर रहा हूँ उनम लगे अपने पद चिह्नो को ढूढ रहा हूँ राधा !

राधा हूँ। रुक क्या गए कान्ह !

कृष्ण मेरा जन्म ! भाद्रपद की कराल विकराल महाकाल रात्रि, क्रुद्ध गगन, फुफकारती दिशाएँ

[प्रभाव आँधी तूफान, बिजली और बारिस का भयकर प्रभाव काफी देर उभरकर मन्द पड जाता है और पाश्र्व मे चलता रहता है।]

कृष्ण हाँ राधा ! जैसे शेषनाग के सभी फन एक साथ विष-ज्वाला बरसा रहे हों, बिजली की प्रलय ध्वनि

[प्रभाव बिजली के कड़कने का प्रभाव कुछ देर उभर कर मन्द पड़ जाता है।]

और कंस की काल-कोठरी में पीड़ा से कराह रही माँ देवकी माँ

[प्रभाव देवकी की प्रसव पीड़ा का प्रभाव उभरता है, उसकी पीड़ा की अकुलाहट उभरती है।]

[दृश्यान्तर का संगीत]

दृश्य चार

[प्रभाव नवजात शिशु के रोने का प्रभाव भी उभरता है।]

वसुदेव ओह ! देवकी मूर्च्छित हो गई है इससे पूर्व कि कंस का कोई प्रहरी उसे बालक के जन्म की सूचना दे, मैं इसे पूर्व योजनानुसार गोकुल के नन्द बाबा के घर पहुँचा दूँगा।

[प्रभाव प्रहरी के आने का प्रभाव।]

प्रहरी ! वचन याद है न ? कोई सुन तो नहीं रहा ! सुनो ! पास आकर ! सब काम ठीक प्रकार से हो गया है न ? शाब्बास ! हम तुम्हें पुरस्कार देंगे। सुनो ! मेरे जाते ही पुन ताले लगा देना मैं दो प्रहर में ही लौट आऊँगा मुख्य द्वार पर आज का गुप्त संकेत बताकर फिर अन्दर आ जाऊँगा। हाँ टोकरी की व्यवस्था हो गई है न ! मुझे तुरन्त जाना होगा अभी इसी क्षण

[प्रभाव ताला और द्वार खुलने का प्रभाव। वर्षा आंधी, तूफान और बिजली का प्रभाव उभरकर मन्द पड़ जाता है। यमुना की बाढ़ का प्रभाव बड़ी भयंकरता से उभरता है और बराबर मन्द-मन्द चलता रहता है।]

ओह ! यमुना तो सागर बन आई है

मैं क्या करूं ? कैसे पार जाऊं ? इस बालक को कैसे पहुँचाऊं ?

[प्रभाव वसुदेव का स्वर ईको होकर उभरता है।]

(वसुदेव का स्वर) वसुदेव ! यादववंश के कुल दीपक की रक्षा तुम्हारा कर्त्तव्य है यदि मरना ही उसकी नियति है तो कंस के हाथों क्या ? क्या कंस के हाथों ? यमुना की लहरों मे बह जाना, इनमे डूब जाना कंस के हाथों मरने से कहीं अच्छा है (स्वर विलीन हो जाता है)

वसुदेव ठीक है ! संकल्प लौह संकल्प के आगे सागर नहीं रुक पाते पहाड उसे रास्ता देते हैं। मैं यमुना को चीरकर उस पार जाऊँगा उस पार जाऊँगा ।

[प्रभाव तेज यमुना का प्रभाव पुन उभरता है।]

ओह, पानी का प्रवाह किनारे पर ही कितना क्षिप्र है, किनारे पर ही पाँव नहीं लग रहे

[प्रभाव बिजली, आंधी, वर्षा का प्रभाव पुन उभरकर मन्द पड जाता है।]

यहां तैरना ठीक रहेगा मां यमुना ! नमस्कार ! मार्ग दे मां ! मार्ग जय यमुना मय्या !

[प्रभाव वर्षा आँधी का प्रभाव पुन तेज होकर मन्द पड जाता है।]

(चढी हुई सांस उभरती है।) पता नहीं लहरें मुझे किस ओर ले जा रही हैं ? (विस्मय और भय से) यह क्या ? इतना भयंकर सांप ! नाग फन तानकर मेरे पीछे पीछे चला आ रहा है ! नागराज ! दया करो ! शंकर-कण्ठ हार दया करो ! वह गया ! कैसे टोकरी पर फन तान रहा था ओह ! पानी का पारावार नहीं मैं जैसे रसातल म डूब रहा हूँ।

[प्रभाव यमुना की बाढ का प्रभाव तेज होकर मन्द पड जाता है।]

यमुना की लहरें टोकरी म भर गई हैं मां ! यमुने ! तू क्या बालक को लहरों के हाथों से मंगल आशीष देने आई थी। मां !

(विश्वास भरे स्वर में) यमुने ! तू भले ही सात सागरों का रूप धारण कर ले मैं पार जाऊँगा अवश्य ही जाऊँगा।

[वसुदेव के तैरने का, पानी चीरने का प्रभाव उभरता है।]

[प्रभाव वर्षा, आँधी का प्रभाव उभरकर मन्द पड़ जाता है।]

[दृश्यान्तर का संगीत]

दृश्य पाँच

[प्रभाव नन्द के घर बधाई के मंगल-वाद्य बजते हैं। शहनाई का प्रभाव काफी देर उभरकर विलीन हो जाता है।]

कृष्ण राधा ! जैसे मैंने और संघर्ष ने एक साथ ही जन्म लिया हो ! मेरा मामा ही मेरे रक्त का प्यासा बन गया है मुझे मारने के लिए असंख्य षड्यन्त्र हुए, योजनाएँ बनीं !

पूतना आई, फिर शकटासुर आया और फिर सुनो ! मेरी हत्या के प्रयत्नों का अन्तहीन क्रम आरम्भ हो गया मेरे ही कारण ब्रज गोकुल पर आए दिन विपत्तियाँ आती रहतीं मुझे मारने के लिए भेजा गया बकासुर, अघासुर, धेनुकासुर

राधा तुमसे छोटी हूँ न ! इन सबका मुझे स्मरण नहीं हाँ ! माँ से सुना सब है इन सबको तुमने मार भगाया।

कृष्ण पता नहीं राधा ! तब मुझमें कहाँ से कोई दिव्य शक्ति उतर आती थी। तब मैंने ग्वाल-बालों, अहीर गूजर युवकों का एक दल बनाया, उन्हें संगठित किया, कंस के अत्याचारों के विरुद्ध, उसके शोषण के विरुद्ध, सारे ब्रजमण्डल में नव-जागरण की यह चेतना फैल गई मैं और बलराम इस आयोजन में जुट गए राधा ! मेरी अन्तरंग ! सखा ! मित्र ! राधा ! सब सुन रही हो न ?

राधा देख भी रही हूँ, अपने कल्पनालोक में इन सबको घटित होते देख रही हूँ ।

कृष्ण	माँ ने बचपन में एक कहानी सुनाई थी आए दिन नयी-से-नयी कहानी सुनने का मेरा हठ होता था मुझे उस दिन नींद नहीं आ रही थी

[प्रभाव फ्लैशबैक का प्रभाव उभरकर फेड हो जाता है।]

[दृश्यान्तर]

दृश्य छह

[प्रभाव कृष्ण का बाल-स्वर में सिसकने, हठ करने का प्रभाव।]

यशोदा	गोपाल ! सो जा मेरे लाल ! सो जा ! बाबा तेरे लिए मिश्री बादाम लेने गए हैं, प्रात ही तुम्हें माखन के साथ बादाम मिश्री मिलेंगे ।

कृष्ण	(बाल-स्वर सिसकते हुए तुतलाती भाषा में) हम नहीं खाएँगे। नहीं खाएँगे। नहीं खाएँगे।

यशोदा	क्या नहीं खाएँगे नन्द कुमार !

कृष्ण	तू बलराम को अधिक देती है तेरे मन में कुछ भेद आ गया है मैया। उसे माखन दही देती है और मुझे कच्चा दूध ही पिलाती है तू झूठ बोलती है मैया! कहाँ बढ़ी है मेरी चोटी ? देख तो। वसी की वैसी ही है और मेरे पर ही सदा माखन चोरी का दोष लगाती है। बल भैय्या को कुछ नहीं कहती।

यशोदा	अच्छा मेरे लाल ! मदन गोपाल ! मैं बलराम को तुम्हारे सामने ही डाटूँगी कान खीचूँगी

कृष्ण	मैया ! ग्वाल-बाला के सामने वह मुझे चिढ़ाता है कहता है तुझे मैय्या ने सुखिया मालिन से लिया है। तू काला है और माँ बाबा गोरे हैं तू उनका पूत नहीं (सिसकता है)।

यशोदा	अब आ ले बलराम ! उसकी वह पिटाई करूँगी कि दय्या दय्या कर उठेगा ! अच्छा ! अब राजा बेटा सो जाएगा ?

कृष्ण	मैय्या पहले वह कहानी सुनाओ ।

यशोदा	कौन-सी ?

कृष्ण वही धरती मैय्या की मैय्या ! क्या सचमुच यह धरती बैल के सीग पर खडी है ?

यशोदा हाँ बेटे ! यह धरती बैल के सीग पर खडी है।

कृष्ण पर कैसे मैय्या ? वह बैल कहाँ खडा है ?

यशोदा वह बैल अपने बल से खडा है लाल !

कृष्ण धरती तो उसके सर पर है, वह कहा खडा है ?

यशोदा (कुछ तग आकर) मेरे सर पर ! अब सो जा !

कृष्ण अच्छा, एक बात और मैय्या ! श्रीदामा बोलता है जब बैल थक जाता है तो वह धरती को एक सीग से दूसरे सीग पर ले जाता है तब भूचाल आता है यह सच है मैय्या ?

यशोदा ये बातें श्रीदामा से ही पूछना ! अब सो जा। देख मैं दिन भर की थकी हुई हूँ।

कृष्ण अच्छा मैय्या ! अब भूचाल कब आएगा ? हैं मैय्या !

यशोदा (डाटते हुए) तू सोता है कि नही ! अच्छा बुलाती हूँ बूढे बाबे को !

कृष्ण (मा को खिजाते हुए) बूढा बाबा नही आएगा नही आएगा हम नन्द बाबा ने सब बता दिया है मय्या ! तुम झूठ बोलती हो। बोलती हो न ? हम नही सोएँगे बुला लो अपने बूढे बाबा को (चिढाने का स्वर उभरता है।)

[प्रभाव सगीत से पर्नेशबैक समाप्त होने का प्रभाव।]

[दृश्यान्तर]

दृश्य सात

[प्रभाव कृष्ण और राधा की उन्मुक्त हँसी का प्रभाव उभरता है।]

राधा (हँसते हुए) तुम बचपन से ही नटखट थे, चचल नन्द किशोर !

कृष्ण कुछ बडे होकर जब इस कहानी का अर्थ समझ मे आया तो मेरे सामने जसे जीवन का लक्ष्य खुल गया हम गूजर अहीर, वृषभ, गो और बैल ही तो हमारा सहारा हैं। दूध-दही-माखन का व्यापार खेती यातायात, सब गोधन पर ही निर्भर है सचमुच ही बैल ने धरती को अपने सीग पर चठा रखा है ।

राधा तुम कितने विलक्षण रहे होगे यह अथ समझने मे !

कृष्ण राधा ! मैंने और बलराम न सकल्प किया इस गोधन की रक्षा का ताकि हमारी धरती खडी रहे और कोई भूचाल न आए। इस काय के लिए मैंने बासुरी उठाई और बलराम भय्या न हल वह हलधर बन गए और मैं गोपाल हल और बल, बासुरी और गाय गोधन राष्ट्र का पवित्र धन है गो हमारी मा है ।

हा राधा ! तुम्हे स्मरण है ? वह भयकर अग्नि काड ! अन्न खलिहानो मे पडा था पुआल के अम्बार लगे थे उस रात हम कितना थक गए थे अचानक आधी रात चारो ओर आग आग का कोलाहल फैल गया ।

[प्रभाव आग आग का जन-कोलाहल और आग की लपटो का प्रभाव काफी दर उभरता है और मन्द मन्द रूप मे चलता रहता है।]

राधा ! वह सवनाश की रात्रि थी आग की लपटें आकाश को डस रही थी दिशाएँ धुएँ से घुट रही थी मीलो तक आग का फैलाव था फिर आयी एक जोर की आधी आग खेतो से जगल तक फैल गई

मैं बलराम हमारा युवक-दल जन मेधा म जुट गया खेत बुझे हुए हवन कुण्ड लग रहे थे घर बुझे हुए श्मशान सारा प्रदश एक मरघट लग रहा था यह अग्निकाड कस के आदेश मे हुआ था ।

[प्रभाव आग आग का जन कोलाहल और आग की लपटो का प्रभाव काफी दर उभरता है और मन्द मन्द रूप म चलता रहता है।]

राधा इस अग्निकाण्ड म बरसान की कई हजार गउएँ और बल जल गय थे।

कृष्ण हम सब जल गए थ मानो मैंने मेरे दल न सारी आग पी ली हो अग्निपान कर लिया हो ! और राधा ! इससे भी भय कर थी वह वर्षा ।

[प्रभाव वर्षा और बिजली का भयकर प्रभाव काफी देर उभरकर मन्द मन्द चलता रहता है।]

कृष्ण राधा ! वह वर्षा थी या प्रलय ? काली घटाओ के भीषण दल आकाश म तुमुलनाद करते बादल ! मूसलाधार वर्षा यमुना मे भयकर बाढ आ गई सम्पूण व्रज प्रदेश उसमे डूब गया गाँव के गाँव बह गए चारा ओर गरजता गुर्राता सागर असख्य लोग डूब गए पशु मर गए वह जन-सहार का कितना विदारक दश्य था ?

[प्रभाव वर्षा का प्रभाव पुन तेज होकर मन्द पड जाता है।]

राधा इस घार सकट म मैंने तुम्हारा नया ही रूप देखा कृष्ण !

कृष्ण तुम भी तो मेरे साथ थी बराबर मेरे साथ हमारा युवक-दल नावा म जा-जाकर जल म घिरे लोगो को निकालने लगा तुमने न जाने कितनी अबलाआ-बालका को बचाया होगा ?

राधा वह समय स्मरण कर प्राणा म एक भयावह कम्पन उठने लगता है गोवधन पवत ने हमारी रक्षा की थी उसकी कन्दराओ म बाढ पीडिता का छिपाया गया सुरक्षा शिविर खोले गए ।

[प्रभाव वर्षा का प्रभाव पुन तेज हो जाता है।]

कृष्ण सकट का गोवधन आ गिरा था।

राधा उस गोवधन को तुमन उठाया था।

कृष्ण नही ! राधा नही ! मैं इस छोटी सी अँगुली सा अशक्त, इस पहाड को कैसे उठाता ?

राधा नही कृष्ण तुमने उसी छोटी अँगुली पर, गोवधन को, सकट के गोवधन को उठाया ।

कृष्ण नही राधा ! तुम मेरी प्राण शक्ति थी सभी के सहयोग की लाठियो ने मिलकर इस गोवधन को उठाया था।

[प्रभाव वर्षा का प्रभाव उभरकर समाप्त हो जाता है।]

राधा ! जब बाढ उतरी तो हजारा लाशो की दुगध से महामारी फैलने लगी और मैं भूखे नगे, बीमार व्रज के लिए नव-निर्माण की, पुनर्वास की योजनाएँ पूण करने मे जुट गया जनता मे घोर निराशा और हाहाकार था

[प्रभाव अशान्त जन-कोलाहल उभरकर धीरे धीरे विलीन होने लगता है।]

राधा हाँ कृष्ण! भूखे नंगे, बीमार बिलखते लोग रेत रेत से भर गए थे गउएँ, बैल सब बह गए थे कैसा दुर्भिक्ष पड़ा था?

कृष्ण राधा! तब सामूहिक श्रम-केन्द्र खोल गये दूर-दूर से अन्न की सहायता मँगवाई गयी और मेरे मामा कंस ने इतनी घोर विपत्ति में भी राजा का कर्त्तव्य पूरा नहीं किया था। इस पंगु समाज को खड़ा करने के लिए एक दिव्य मनोबल की आवश्यकता थी

राधा उसे पूरा किया तुम्हारी बाँसुरी ने कान्हा! जब तुम कदम तले बाँसुरी बजाते

[प्रभाव बासुरी का प्रभाव काफी देर उभरकर मन्द मन्द चलता है।]

कान्हा! तुम्हारी बासुरी हमें कौन देती हम मन्त्र बिंधी-सी तुम्हारे पास पहुँच जाती

[प्रभाव बाँसुरी का प्रभाव पुन तेज होता है और मन्द मन्द चलता रहता है।]

कितना जादू था मुरली में? वह वशीकरण भरी तान टोना चलाने वाली लहरें मानो रस का अमृत स्रोत थी।

कृष्ण मैं चाहता था अपने लोगों की थकान और पीड़ा को बाँटना उसे कम करना रास का आयोजन इसीलिए किया करता था वह सन्त्रास से मुक्ति का पर्व था।

राधा कृष्ण! तुम्हारे नटवर नागर, रास रसेश, रसिक शिरोमणि रूप ने किसको नहीं बाधा मोहन!

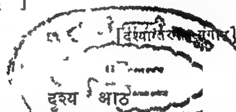
[प्रभाव मुरली का प्रभाव पुन तेज होने लगता है।]

पूर्णिमा की रात्रि स्वच्छ शीतल चन्द्रिका पर्व यमुना की रेतिल कछार गन्ध सिंचा पवन तुम्हारी मुरली की मादक तान पर सभी चरण थिरक उठे थे घुंघरू खनक उठे थे मृदंग गमक उठे थे

[प्रभाव मुरली का प्रभाव तेज होता है और नृत्य का प्रभाव भी उभरता है। घुंघरुओं और मृदंग का स्वर भी।]

राधा यमुना की एक एक लहर मे चाँद उतर आया था प्रत्येक गोप-ग्वाल कृष्ण था और प्रत्येक गोपिन ग्वालिन राधिका कितना अपूर्व आनन्द और उल्लास था ! प्राणों पर एक दिव्य मादकता खुमार चढ रहे थे हम उदात्त हो रहे थे—उदात्त विशद यह आनन्द-पर्व था महान आनन्द पर्व ।

[प्रभाव मुरली और नृत्य के प्रभाव पुन उभरकर लीन हो जाते हैं]



कृष्ण राधा ! व्रज को खडा करने मे मुझे कितना भयंकर संघर्ष करना पडा ? यहाँ के ग्वाल-बाल दूध के लिए तरसते थे । दूध दही माखन मथुरा की मण्डियो म बिकता था मैं अपने युवक-संगठन को शक्तिशाली बनाना चाहता था इसीलिए मथुरा जाते दूध माखन को रोकना पडा ।

हा राधा ! तुम्हारी गोप-बालाओ ने, सहेलियो न जब तुम्हारे लाख समझाने पर भी यमुना-कुडो मे अर्ध नग्न स्नान बन्द नही किया, तब उन्हे ठीक मार्ग पर लाने के लिए उनके वस्त्र छिपाने पडे । जब उन्होंने कभी भी ऐसा न करने की शपथ ली तभी उनके वस्त्र लौटाए गए

राधा कस के अनुचर एक बार ऐसे ही नग्न नहा रही गोपी को उठा कर ले गये थे कितना हाहाकार मचा था !

कृष्ण कस के ऐसे अत्याचारो को मैंने चुनौती दी । मैं और बलराम कस के मल्ल-युद्ध मे भाग लेने के लिए मथुरा गये थे । साथ थी मेरी ग्वाल सेना मेरा युवक-दल राधा ! वह बडा ही भव्य समारोह था

राधा (विकल स्वर म) कणु ! कणु ! मुझे उस क्षण का स्मरण न करवाओ कणु ! वही तो हमारे वियोग के समारंभ का दुःखद क्षण था ।

कृष्ण वियोग का नही राधा योग का साधना का महान् क्षण था

तुझे और मुझे अभी और तपना था हाँ राधा ! मथुरा में वह एक बड़ा भारी उत्सव था मेरा युवक-दल सर्वत्र फैल गया था मथुरा की युवक शाखा भी कंस विरोधी थी उसने हमें पूरा सहयोग दिया गुप्त रूप में ही हमने कंस के विरुद्ध जनता के रोष को और भी उभार दिया था।

मैं बलराम और मेरे कुछ युवक ग्वाल कंस के अखाड़े में जैसे ही द्वार प्रवेश करने लगे हम पर महावत ने कुवलयपीड हाथी छोड़ दिया वह मदिरा पीकर अन्धा हुआ था चिंघाड़ता हुआ वह हमें कुचलने के लिए लपका

[प्रभाव हाथी के चिंघाड़ने और जन कोलाहल का प्रभाव उभरता है।]

राधा हाँ ! यह सब सुना था जब नन्द बाबा तुम्हें मथुरा छोड़ अकेले ही आए थे तब हमारी क्या दशा हुई होगी ? मैं यशुदा मैय्या और गोपियाँ सब उनसे तुम्हारी गाथाएँ सुनती तब मेरे मन सुख दुःख की विचित्र पुलकन जगती।

कृष्ण राधा ! मैंने और बलराम ने वह हाथी मार गिराया बलराम ने हल के फाले से उसका पेट ही चीर डाला ।

[प्रभाव हाथी की मरणान्त चिंघाड़ उभरती है।]

अखाड़े में हमारा सामना हुआ कंस के मल्लों से जो वज्र शरीर वाले थे। एक एक कर चार मल्ल दो मेरे साथ और दो बलराम के साथ भिड़े वे हमें मारना चाहते थे मल्ल-युद्ध के नियमों के विरुद्ध भिड़ रहे थे हमने चारों को मार डाला चारों ओर कोलाहल फैल गया।

[प्रभाव जन-कोलाहल का प्रभाव।]

तभी क्रुद्ध कंस गरज उठा ! जैसे भयंकर बादलों में बिजली कड़की हो।

कंस (कड़कते स्वर में) सैनिको ! बलराम और कृष्ण को तुरन्त पकड़ लो ! इन्हें भी काल कोठरी में डाल दो। भागने न पायें !

कृष्ण (ओजस्वी स्वर में) कंस ! सावधान ! कंस ! देख ! मैं कृष्ण आ गया हूँ तेरा काल आ गया हूँ ।

(और भी ओजस्वी स्वर में) कोई भी सभा से हिलने न पाए।

जो जहाँ है वही रुक जाए कस के सैनिको ! सावधान ! मेरे युवक-दल ने इस पण्डाल का घेराव कर लिया है। नगर मे कस के सभी सैनिक मेरे दल के आगे आत्म-समपण कर चुके हैं आप सभी अपने शस्त्र धरती पर रख दो।

मेरे ग्वाल युवको ! कस के सैनिको से शस्त्र ले लो ! कस ! देख रहे हो, वसुदेव के पुत्र को ! देवकी के पुत्र को ! जो तुम्हारे असख्य षडयन्त्रो मे बाद भी जीवित है।

कस ! मैं यहा आया हूँ जनता का प्रतिनिधि बनकर तूने जनता पर जो घोर अत्याचार किये हैं, उनका हिसाब करने !

देख ! कृष्ण तुम्हारी ओर आ रहा है तुम्हारा काल आ रहा है कस ! तुम्हारा काल आ रहा है ! बलराम ! आप इस ओर से बढें !

कस (कडकते स्वर म) रुक जाओ ! कृष्ण ! बलराम ! रुक जाओ वही ! मैं बालको के वध का पाप नही लेना चाहता !

कृष्ण (ओजस्वी स्वर मे) मेरे जिन छह भाइयो को जन्म लेते ही तूने मार दिया, क्या वह बाल हत्या नही थी ?

कस रुक जाओ कृष्ण ! तुम्हारे माता पिता का जीवन मेरे हाथ मे है

कृष्ण कस, अब तो तुम्हारा अपना हाथ भी तुम्हारे हाथ मे नही है भागना मत कस ! भागना मत ! मत भागना कस !
ग्वाल युवको ! आगे बढकर कस को पकड लो ! चारो ओर से आगे बढो !

[प्रभाव जन-कोलाहल का प्रभाव उभरता है हे ! हे ! मारो ! मारो ! पकडो पकडो की ध्वनियाँ भी। भयकर प्रभाव उभरकर मन्द पड जाता है।]

राधा ! ग्वालो न कस को घेर लिया मैंने और बलराम ने उसे केशो से पकडकर नीचे गिरा दिया मैं उसकी छाती पर सवार हो गया राधा ! इन घूसो से ही मैंने उसका वध कर दिया।

राधा कनु ! तुम्हारी योजना इतनी सफल रही ! इतने बडे शक्तिशाली शासक को मुट्ठी-भर गूजर-युवको ने समाप्त कर दिया।

कृष्ण राधा ! फिर एक नये सघष का समारम्भ हुआ। कस की दोनो

पत्नियाँ मगधराज जरासंध की बेटियाँ थीं। वह प्रतिशोध की आग बुझाने के लिए दल-बल सहित मथुरा पर घिर आया।

[प्रभाव आक्रमण का प्रभाव, घोड़ा रथों की टाप ध्वनि काफी देर उभरकर मन्द पड़ जाती है।]

कृष्ण राधा! जरासंध ने सोलह बार आक्रमण किया। उसे मैंने और बलराम ने प्रत्येक बार पराजित किया यह एक बहुत बड़ी चुनौती थी एक नये राज्य के लिए उठ रहे यदुवंश के लिए जरासंध का भय बराबर बना हुआ था। मैं और युद्ध नहीं चाहता था चाहता था शक्ति संचय करना मैंने एक नया निर्माण किया दूर सागर मे एक द्वीप पर नया नगर निर्माण किया द्वारिका नगर और सम्पूर्ण यदुवंश को वहाँ ले गया।

[प्रभाव काफिले के जाने का प्रभाव उभरकर विलीन हो जाता है।]

[दृश्यान्तर का संगीत]

दृश्य नौ

राधा कृष्ण! तुम द्वारिका चले गए। मुझे लगा मानो मेरी चेतना मेरे प्राण कहीं उड़े जा रहे हों मथुरा मे तुम थे तो निकटता की अनुभूति बराबर बनी रहती थी।

कृष्ण राधा! मैं तो केवल संकल्प बन चुका था जन-कल्याण मेरा व्रत था मैं कहीं भी जाने को तत्पर हो सकता था। हाँ राधा! अब द्वारिका से संघर्ष का एक और आयाम खुलता है। मुझे हस्तिनापुर से पाडवों का निमन्त्रण आया राजसूय यज्ञ मे भाग लेने का पाडवों ने दिग्विजय के उपलक्ष मे इसका आयोजन किया था। बड़ा भव्य समारोह था।

[दृश्यान्तर का संगीत]

दृश्य दस

[प्रभाव मगल ध्वनियो का प्रभाव और जन कोलाहल उभरता है।]

व्यास शान्त ! शान्त ! सभी शान्त हो !
आर्यावत भारत खण्ड के वीर क्षत्रिय योद्धाओ ! इस राजसूय यज्ञ मे आपका अभिनन्दन करता हूँ हार्दिक स्वागत करता हूँ। यदुकुल भूषण, वीर शिरोमणि, श्रीकृष्ण निष्काम जन सेवी हैं। जन-कल्याण लोक मगल ही उनकी आराधना है । आज के सभापति पद के लिए मैं उनका नाम प्रस्तावित करता हूँ ।

अर्जुन मैं इस प्रस्ताव का अनुमोदन करता हूँ श्रीकृष्ण से अनुरोध करता हूँ कि वे सभापति पद ग्रहण करें ।

[हर्ष ध्वनि का प्रभाव उभरता है।]

कृष्ण बन्धुओ ! इस आदर के लिए मैं आपका आभारी हूँ।
शिशुपाल ठहरो कृष्ण ! आसन ग्रहण मत करना ! एक गूजर ग्वाला सभापति-पद का अधिकारी नही हो सकता।
अर्जुन (क्रोध मे) शिशुपाल !
कृष्ण रुको अर्जुन ! शिशुपाल को अपने विचार व्यक्त करने का पूर्ण अधिकार है।
अर्जुन मगर अशिष्टता का अधिकार तो नही।
शिशुपाल यथार्थ, सत्य भाषण अशिष्ट नही होता अर्जुन ! यह कृष्ण, कहाँ का निष्काम साधक है ? यह निम्नजाति का गूजर ग्वाला अहीरो की छोकरियो से नाचने वाला यह कहाँ का वीर-शिरोमणि बन गया है ? हाँ ! चोरी म यह बहुत प्रवीण है दूध माखन की चोरी नहा रही गूजरियो के वस्त्रो की चोरी राजकन्याओ की चोरी ।
अर्जुन शिशुपाल ! तुम इतने नीच हो सकते हो ?
शिशुपाल , तुम्हारे इस निष्काम लोक सेवक से अधिक नही यह महा धूर्त पाखण्डी छलिया कपटी पूछो इससे। द्वारिका क्यो भाग गया है ?

कृष्ण (दृढ स्वर म) शिशुपाल ! अब यदि एक भी शब्द कहा तो तुम्हारा कुशल नही।

शिशुपाल (अट्टहास से) मेरा कुशल ! अरे कायर ! साहस है ता सामन आ ?

कृष्ण (ओजस्वी स्वर मे) सावधान शिशुपाल ! मैं सामने ही आ रहा हूँ सुदशन ! मेरे वीर चक्र ! शिशुपाल-से उद्दण्ड का शिर छेदन करो ! तुरन्त ! अविलम्ब !

[प्रभाव सुदशन चक्र के चलने की गूज उभरती है और शिशुपाल का भयकर चीत्कार।]

वीर बन्धुओ ! शिशुपाल की मा को मैंने इसके एक सौ एक अप क्षमा करने का वचन दिया था यह सीमा सहनशीलता की अन्तिम सीमा है। इसके आगे क्षमा कायरता है अभिशाप है अपमान का पान है।

वीरो ! यह राजसूय यज्ञ शान्ति-यज्ञ है यह अस्तित्व का अनुष्ठान है एकछत्र राज्य के अन्तगत, दृढ केन्द्र के अन्तगत सभी राज्य शान्ति से रहे निर्वैर और निर्विरोध जीएँ यही इसका उद्देश्य है राज्यविस्तार की अमानवीय कामना इसके मूल मे कदापि नही ! कदापि नही !

[प्रभाव श्रीकृष्ण की जय श्रीकृष्ण की जय यह जयघोप उभरकर शान्त हो जाता है।]

[दृश्यान्तर का सगीत]

दृश्य ग्यारह

राधा यह शिशुपाल तुम्हारी पटरानी रुक्मिणी का मगेतर था न ?

कृष्ण हा ! वही था मेरी फूफी का पुत्र भी तभी से इसके मन मे ईर्ष्या का नाग पल रहा था ।

हा राधा ! इसी राजसूय यज्ञ मे प्रात मैं सभापति बना और दोपहर का मैंने सभी जूठे बतन उठाए और साफ किए मेरे लिए यह सेवा अधिक सुखद थी ।

राधा ! इसी यज्ञ म महाभारत का विप-बीज बोया गया।

पाडव जूए मे कौरवो के हाथ न केवल राज्य ही हार गए, द्रौपदी को भी हार गए दु शासन द्रौपदी को कौरव सभा म केशो से घसीटता हुआ ले आया द्रौपदी चीत्कार कर रही थी

[दृश्या तर का सगीत]

दृश्य बारह

[प्रभाव द्रौपदी का चीत्कार उभरता है। सभा का कोलाहल भी।]

द्रौपदी बचाओ! बचाओ! छोड दे दुष्ट! छोड दे! सुयोधन! यह सब तुम्हारे आदेश से हो रहा है? सुशासन को रोको सुयोधन!

सुयोधन हाँ द्रौपदी! मेरे ही आदश से हो रहा है। तुमने कहा था न अधे का पुत्र अधा यह उसका प्रतिकार है।

द्रौपदी नीच! नारी से, अपनी भावज से ऐसा नीच व्यवहार?

सुयोधन (अट्टहास) द्रौपदी! अब तुम मेरी सम्पत्ति हो! जूए मे जीती हुई हो! मैं तुम्हे अपनी जघाओ पर बिठाऊँगा सुशासन! इसका आचल उतार फेंको। दुकूल उतार दो। आदेश पालन हो।

द्रौपदी सुशासन! निलज्ज! छोड द! मेरा आचल छोड दे! नीच! पशु! मा गाधारी! तुम्हारी पट्टी अब भी नही खुलती? धृतराष्ट्र! पितामह! गुरु द्रोण! आप सब मौन हैं? विदुर! कहा गई आपकी नीति? सब मौन हैं! खाने वाले अपनी अतरात्मा भी खा चुके हैं।

[प्रभाव सुदर्शन की गूंज का प्रभाव उभरता है।]

कृष्ण मैं आ गया द्रौपदी ! मैं आ गया !
(दृढ स्वर में) सावधान ! सुयोधन ! सुशासन ! छोड दो द्रौपदी का आंचल ! हट जाओ आगे से मेरा सुदर्शन देख रहे हो ? शिशुपाल वध भूल गए सुयोधन ! कृष्ण के होते हुए अबला नारी रक्षिता है कृष्ण का जन्म ही दीना-दलितों की रक्षा के लिए हुआ है ।

द्रौपदी ! सभा से बाहर चलो ! वस्त्र सँभालो !

सावधान ! कोई अपने स्थान से न हिले ! धृतराष्ट्र ! आज की घटना एक भयंकर दुखान्त की भूमिका है यह स्मरण रखना ! चलो द्रौपदी !

[प्रभाव आतंक भरा संगीत उभरता है।]

[दृश्यान्तर का संगीत उभरता है]

दृश्य तेरह

राधा कृष्ण ! तुमने द्रौपदी के चीर बढाए उसके चीर, वस्त्र उतरने नहीं दिए जब यह घटना मैंने ब्रज में सुनी थी तो खुशी से झूम उठी थी ।

कृष्ण राधा ! तुम से जुदा होकर मैं एक संकल्प बन गया था लोक कल्याण का संकल्प ।

राधा ! जानती हो ! मेरे संरक्षण में सोलह हजार एक सौ राजकन्याएँ रही हैं उन सभी को भौमासुर ने भ्रष्ट किया था वे उसकी बंदिनी थी मैंने भौमासुर को ललकारा था।

[प्रभाव युद्ध का कोलाहल उभरता है और मन्द-मन्द चलता रहता है।]

[दृश्यान्तर का संगीत]

दृश्य चौदह

कृष्ण राजकन्याओ ! भौमासुर युद्ध मे मारा गया है। उस दुष्ट ने आपको भ्रष्ट किया है मैं जानता हूँ आपके माता पिता आपको स्वीकार नही करेंगे कोई आपसे विवाह के लिए आगे नहीं आएगा। आपको समाज का कुष्ट माना जाएगा। मैंने आप सबके लिए द्वारिका मे व्यवस्था कर दी है। आपके पूर्ण भरण-पोषण का दायित्व मुझ पर होगा। वहा चलें ! स्वावलम्बी बनें ! पवित्र आचरण से नये जीवन का समारम्भ करें !

[दृश्यान्तर का सगीत]

दृश्य पन्द्रह

कृष्ण (हँसते हुए) राधा ! मैं उनका स्वामी था, पति नही। तुम भी ऐसा मानने लग गई थी ? हूँ कही इतिहास म ऐसी भूल हो गई तो ?

हा राधा ! फिर समारम्भ हुआ महाभारत का बनवास से लौटे पाडवो को उनके अधिकार देने स सुयोधन ने इन्कार कर दिया तनाव बढने लगा मैं पाडवो की ओर से शान्ति दूत बनकर कौरव सभा मे गया।

[दृश्यान्तर का सगीत]

दृश्य सोलह

[प्रभाव सभा का कोलाहल उभरता है।]

कृष्ण महाराज धृतराष्ट्र ! पितामह श्री ! गुरुवर द्रोण ! कौरव सभासदो ! मैं सधि दूत शान्ति दूत के रूप मे आया हूँ। चाहता हूँ कौरवा पाडवों का सघर्ष टल जाए महायुद्ध की विभीषिका बहुत ही भयकर होती है युद्ध-पूर्व आतक युद्ध-

कालीन विध्वंस विनाश, युद्धोत्तर विषम सन्त्रास ये युद्ध के ताडव चरण हैं। किसी के अधिकारों का दमन युद्ध का निमन्त्रण है शान्ति दोनों पक्षों के लिए हितकर है पांडव केवल पांच गांव लेकर सन्तुष्ट हो जाएंगे वास्ते महाराज!

सुयोधन केशव! पांच गांव तो क्या सूई के अग्र भाग जितनी धरती भी हम उन्हें नहीं देंगे।

कृष्ण सुयोधन! इसे युद्ध की चुनौती मान लिया जाए?

सुयोधन जैसी तुम्हारी इच्छा!

कृष्ण ठीक है। मैं पाण्डवों की ओर से युद्ध की चुनौती स्वीकार करता हूँ स्मरण रहे सुयोधन! युद्ध हमने चाहा नहीं है हमने मांगा नहीं है हम पर आरोपित हुआ है सिवा इसे स्वीकारने के हमारे पास कोई विकल्प नहीं। सुनो सुयोधन! सभी सुनें! मैं, कृष्ण इस महाभारत युद्ध में भाग लूंगा मगर अकेला निःशस्त्र युद्ध-काल में शस्त्र नहीं उठाऊँगा मैं अकेला एक ओर हूँगा मेरी सम्पूर्ण सशस्त्र सेना दूसरी ओर होगी मैं किस ओर हूँगा और मेरी सेना किस ओर सुयोधन! इसका निर्णय तुम और अर्जुन मिलकर कर लेना मैं युद्ध को स्वीकार करता हूँ अब महाभारत अनिवार्य है अनिवार्य है

[प्रभाव सभा-रव उभरता है।]

[दृश्यान्तर का संगीत भी]

दृश्य सत्रह

[प्रभाव युद्ध के रणसिंहों और वाद्यों का प्रभाव कुछ समय तक उभरकर मन्द मन्द चलता रहता है।]

अर्जुन केशव! जो शत्रु बनकर आए हैं सब मेरे अपने हैं गुरु पितामह मातुल चाचा बन्धु सखा। राज्य के लिए इनका वध करूँ केशव!

गोपाल! मेरी भुजाएँ शिथिल पड रही हैं। नसों में रक्त जम रहा है। हाथों में कम्पन जग रहा है। गाण्डीव उठाए नहीं उठता

कृष्ण अर्जुन ! यह धर्मयुद्ध है अधिकारों के लिए किया जा रहा युद्ध अयाचित, आरोपित युद्ध यह सीमा विस्तार, राज्य विस्तार का युद्ध नहीं है। यह कायरता अशोभनीय है कौन किसे मारता है? कौन मरता है? अर्जुन ! सब निमित्त बनते हैं अन्यथा आत्मा अमर अजर, अविनाशी है। तू निमित्त बनेगा मात्र माध्यम माध्यम मात्र शरीर बदलना पुराने वस्त्र बदलने के बराबर है सुना ! धर्मयुद्ध में मरेगा तो स्वर्ग मिलेगा, विजयी होगा तो राज्याधिकारी बनेगा कौन्तेय ! उठ ! युद्ध का संकल्प बनकर उठ निश्चय बनकर उठ

अर्जुन ! धर्म में आस्था रख ! यही अधिकार है फल मेरे पर छोड़ ।

अर्जुन आप पर ! (विस्मय में) आप पर !

कृष्ण हाँ ! मुझ पर मैं 'मेरा मैं' आत्मा का संकल्प है सब आत्मा के संकल्प पर छोड़ दे देख अर्जुन ! देख आत्मा का विराट् रूप मेरा विराट रूप

[प्रभाव एक दिव्य प्रकार की गूंज-सी उभरती है और मन्द मन्द चलती रहती है।]

अर्जुन हजारों करोड़ों सूर्यों का प्रचण्ड प्रकाश ! हजारों मुख ! उनसे निकल रही भीषण ज्वालाएँ ! हजारों नेत्रों से बरस रहा आग्नेय तेज ! हजारों भुजाएँ ! हजारों चरण !

हे सनातन पुरुष ! हे आदि देव ! स्वामी ! मुझे आत्मज्ञान हो गया। केशव ! जनार्दन ! मैं सब जान गया। मेरा मोह भंग हो गया !

[प्रभाव पूर्व प्रभाव एक बार पुन उभरकर विलीन हो जाता है।]

मधुसूदन ! मेरे में नयी शक्ति नया ज्वार नयी प्राण चेतना आ गई है ! मेरी भुजाएँ फड़क उठी हैं।

केशव ! अपना पाञ्चजन्य शंख बजा दो ! दिशाओं को प्रकम्पित करने वाला शंख बजा दो !

[प्रभाव श्रीकृष्ण के शख का तुमुलनाद उभरकर मद पडता है और महाभारत युद्ध का भयकर प्रभाव काफी देर उभरकर मद पडने लगता है।]

[दृश्यान्तर का सगीत]

दृश्य अट्ठारह

कृष्ण राधा! उस युद्ध मे कोई नही मरा मैं ही बार-बार मरा मैं ही बार बार घायल होकर गिरता मैं ही घायल होता मैं ही चीत्कार करता १८ दिन के महाभारत मे मेरा ही रक्त बहा है उस सम्पूर्ण युद्ध का सवनाश मैंने अपने पर ओढ लिया है उसकी विभीषिकाओ को अपने पर सहा है

(थके स्वर म) राधा! इसीलिए मैं काला पड गया हूँ मुझे ग्रहण लग गया है मेरा शख मेरी बासुरी का ही स्वर है मेरा सुदशन मेरे शख का ही तेज है बासुरी, जीवन का आनन्द, उल्लास, माधुय है शख सकल्प का जयघोष जयनाद है और सुदशन, शौय पराक्रम का रूप है यही तो है तुम्हारा कृष्ण

[प्रभाव दूर से व्यास के स्वर मे गीता का श्लोक उभरता है।]

व्यास (गाकर) सव धर्मान् परित्यज्य मामेक शरण व्रज।
अह त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच ॥

राधा कनु! लगता है सूय ग्रहण समाप्त हो गया है।

कृष्ण हाँ! सूय राहु की कालछाया स मुक्त हो गया है।

[प्रभाव बाँसुरी का प्रभाव उभरकर मन्द मन्द चलता रहता है।]

राधा (उल्लास भरे स्वर मे) कनु! कनु! मेरी ज्योति लौट रही है! आँखो स अधकार उड रहा है! आँखो मे रग भर रहे हैं! प्रकाश की सुनहरी किरणें, आलोक के पावन कण, पुत लियो को धो रहे हैं

कनु! कनु! मैं तुम्हे देख रही हूँ वही सलोना रूप! वही

माधुरी ! वही लावण्य ! नयनो की वही बाकी चितवन ! और वही बाँसुरी !

कृष्ण वर्षों पूर्व कुरुक्षेत्र का महाभारत ही मुझे ग्रस गया था ।

राधा ! यही से मैंने गीता सन्देश दिया था अर्जुन मे मैंने स्वय को देखा था स्वय को शिथिल होते पाया था गीता-ज्ञान स्वय को दिया था स्वय को तुम्हारे सामने खडा कर उस ज्ञान मे थी तुम तुम्हारा योग तुम्हारी शक्ति तब से तुम मेरे ध्यान मे तिरती रही मैं तुम्हारा प्राणायाम करता रहा

राधा ! मैंने युग सक्रमण का विष पिया है उस हलाहल का पान कर युग चेतना को प्रतिष्ठा दी है तुम्ही तो मेरे युगबोध की दृष्टि हो । तुम्हे पाकर मानो मेरा ग्रहण भी टूट गया है वही कुरुक्षेत्र मे वर्षों पूर्व मुझे महाभारत का सन्त्रास ग्रस गया था और आज यही मैं उस काल ग्रहण से मुक्त हुआ हूँ ।

राधा कृष्ण ! मेरे मोहन ! कान्हा ! तू मेरा है न ? मेरा ही है न ?

कृष्ण राधा ! तूने ही तो मुझे अर्थ दिया है रेखाकित किया है राधा के सन्दर्भ मे ही कृष्ण का, कृष्ण की गीता का अर्थ है तुम मेरा मन्त्र हो और मैं तुम्हारी टीका हूँ तुम्हारा भाष्य हूँ आज हम सटीक हुए हैं ।

राधा कृष्ण ! मा यशुदा की आखो का ग्रहण भी उतर रहा होगा वह रहा होगा । चलो ! मा बाबा के पास चले !

कृष्ण चलो राधा !

[प्रभाव बासुरी का प्रभाव बहुत देर उभरकर धीरे धीरे विलीन हो जाता है ।]

प्रबुद्ध



आचार्य चतुरसेन

दृश्य एक

[मृदु तन्तु वाद्य की अस्फुट ध्वनि]

(नेपथ्य में) वृद्ध महाराज शुद्धोदन विशेष प्रसन्न दिखाई पड रहे हैं। वे प्रासाद के भीतरी अलिन्द में एक स्फटिकमणि पीठ पर बैठे हैं। उन्होंने सम्मुख खड़े प्रतिहार को पुकारकर कहा

महाराज — अरे, देख तो, युवराज सिद्धार्थ अभी मृगया से लौटे या नहीं।

प्रतिहार — (आगे बढ़ने की पदचाप और बरछा धरती पर टेकने का शब्द) महाराज की जय हो। परम परमेश्वर भट्टारक पादीय महाराज कुमार अभी अभी मृगया से लौटे हैं। अब वे वायुमण्डप में विश्राम कर रहे हैं।

महाराज — (कुछ हँसकर) अच्छा, अच्छा। महानायक प्रबुद्धसेन और महामात्य विजयादित्य को यहाँ भेज दे।

प्रतिहार — जो आज्ञा महाराज।

[जाने की पदचाप। बरछा पृथ्वी पर टेकने का ...]

महाराज — ठहर, चवरवाहिनी को यहाँ ... कर।

प्रतिहार — जो आज्ञा।

[प्रतिहार के जाने ... आने]

चवरवाहिनी — जय हो देव, ...

महाराज (प्रसन्न स्वर मे) अरी विजया, जा राजमहिषी मे कह दे, कि आज ही तो भाण्ड वितरण का दिन है। सभी राजकुमारियाँ आ गई होगी। महिषी स्वय उनकी सुश्रूषा करें। ऐसा न हो कि किसी को खिन्न होने का अवसर मिले।

चवरवाहिनी जैसी महाराज की आज्ञा।

[चवरवाहिनी के जाने और महानायक प्रबुद्ध सेन के आने का शब्द]

महानायक (खड्ग कोष से खीचने और उष्णीष स लगाने का शब्द) परम परमेश्वर, परम वष्णव

महाराज (हँसकर) हुआ। महानायक, आज सारी ही सना सज्जित रहनी चाहिए। ज्यो ही कुमार सिद्धाथ अतिम भाण्ड वितरण करें, त्यो ही जयघोष और सैनिक अभिवादन होना चाहिए। आज ही कुमार सिद्धाथ सना को पताका प्रदान करेंगे।

महानायक महाराजाधिराज की जय हो! समस्त सेना सज्जित होकर महा भट्टारक महाराजकुमार के अतिम भाण्ड वितरण की प्रतीक्षा कर रही है।

कचुकी (पुकारकर) महामहिम महामात्यचरण विजयादित्य पधार रहे हैं।

महामात्य महाराज की जय हो!

महाराज (हँसत हुए) महामात्य, अब तो समय उपस्थित है। फिर विलब क्यो? सभी राजकुमारियाँ आ तो गइ। तुम कुमार सिद्धाथ को तृतीय अलिन्द मे ले जाओ। वही भाण्ड वितरण होगा। हाँ, तुम कुमार के सवथा निकट रहना और उनकी गतिविधि का सूक्ष्म निरीक्षण करत रहना। नेत्रा का तारतम्य और ओष्ठ स्फुरण गूढ मनोगत भावो को प्रदर्शित कर देता। ज्यो ही तुम देखो, कुमार किसी कन्या के प्रति आकर्षित हुए हैं त्यो ही तुम शखध्वनि करना और पुरोहित को शुभ सवाद देकर मेरे निकट भेजना। (हँसते हैं।)

[अमात्य भी हँसते हैं।]

अमात्य (हँसते हुए) जो आज्ञा। परन्तु [illegible] तक नही आई है। वह

[दण्डधर के आकर भाला टेकने की आवाज

दण्डधर (पुकारकर) जय हो देव, कोली राजनन्दिनी महाभट्टारक महाराजकुमार के भाण्ड-प्रसाद पान की अभिलाषा से आई हैं। वे द्वार पर उपस्थित हैं, और देवचरणों में अभिवादन निवेदन कर रही हैं।

महाराज (उठते हुए जल्दी में) जाओ, जाओ, महामहिषी से कहो कि वे स्वयं कोली राजनन्दिनी की यथोचित अभ्यर्थना करें।

[जाने का पदचाप]

(स्वगत) अहा, आज हमारे पूर्वजों के पुण्य प्रताप से यह शुभ दिन आया। अस्तगत जीवन में आशा की ज्योति फूटी। हमारा सिद्धार्थ, मेरे नेत्रों की ज्योति, मेरी वृद्धावस्था का सहारा, हमारे शाक्य वंश को उज्ज्वल करेगा। अब तो मैं इस दुस्सह राज्य भार को उसी के कंधों पर डाल निश्चिंत होऊँगा। (जरा ऊँचे स्वर से) जाओ, अमात्य जाओ, तुम भी जाओ। देखना, कार्य क्रम में कोई त्रुटि न रहने पाए।

अमात्य मैं चला महाराज।

[जाने की पदचाप]

दृश्य दो

(नेपथ्य में) वायुमण्डप की एक स्वच्छ स्फटिक शिला पर सिद्धार्थ विपण्ण वदन बैठे थे। उनके शरीर पर केवल एक उत्तरीय और अधोवस्त्र था। वे मानो किसी गहन चिन्ता में मग्न थे। वसन्त की मृदुल वायु उनके काकपक्ष को लहरा रही थी। कुसुम गुच्छ झूम झूमकर सौरभ बिखेर रहे थे। तप्त स्वर्ण के समान उनकी शरीर कांति उन महीन वस्त्रों से बिखरी पड़ती थी। उनका मुख, चिन्तन की गम्भीर भावना के कारण प्रस्फुटित किशोरावस्था की उत्फुल्लता से रहित हो गया था। पर उनका अप्रतिम सौन्दर्य कुछ और ही रंग ला रहा था। उनकी सुडौल गर्दन विशाल वक्षस्थल, प्रलम्ब बाहु और केहरी जैसी ठवन असाधारण थी। सुकोमल हृदयगत भाव सुकुमार देह और पुंसत्व और उद्गम, एक अलौकिक मिश्रण बना रहे थे। वे शिलाखण्ड पर बैठे दोनों हाथ जाँघों में देकर सम्मुख

पुष्करिणी म खिले एक कमल पुष्प पर बार बार मत्त भ्रमर का प्रणय आक्रमण देख रहे थे। परन्तु उस विनोद का कुछ प्रभाव उनके हृदय पर था, यह नही कहा जा सकता। उनकी दृष्टि भ्रमर पर भी अवश्य, पर वे किसी गूढ जगत मे विचरण कर रहे थे। कभी कभी उनके होठ फडक उठते और कोई अस्फुट शब्द-ध्वनि उनम से निकल जाती थी। वे इतने मग्न थे कि कब कौन उनके निकट आ खडा हुआ, यह उन्हे नही ज्ञात हुआ।

[बलाधिकृत के आने की पदचाप]

बलाधिकृत महाभट्टारक राजकुमार की जय हो!

सिद्धार्थ (घबराकर) ओह, आर्य हैं। आपके पधारने का तो मुझे भान तक नही हुआ। अभिवादन करता हूँ।

बलाधिकृत (हँसते हुए) आयुष्मान एधि कुमार! मेरे आने का तुम्हे कैसे भान होगा भला, तुम तो वत्स, अपने ही म भूले रहते हो। क्षण भर भी विलम्ब हुआ कि तुम गम्भीर चिन्तन मे मग्न हुए। कुमार क्या प्रतापी शाक्य वश के एकमात्र उत्तराधिकारी के लिए यह उचित है?

सिद्धार्थ आर्य, क्षमा कीजिए। मैं भविष्य मे ध्यान रखूगा। परन्तु आज मेरी परीक्षा हो गई न?

बलाधिकृत आशातीत वत्स। तुम्हारे जैसे अन्यमनस्क शिष्य से मुझे इतनी आशा न थी। सभी कहते थे, कुमार लक्ष्यवेध नही कर सकेंगे। तुम अभ्यास ही कब करते थे। परन्तु आज मैं धन्य हुआ। तुम शाक्य-वश के दीपक हो। मैं भविष्यवाणी करता हूँ—तुम अप्रतिम योद्धा

सिद्धार्थ (बात काटकर) आर्य, पुरजन फिर तो मेरी परीक्षा का हठ न करेंगे?

बलाधिकृत कभी नही। वे पूर्ण सन्तुष्ट हैं। सवत्र ही तुम्हारी अप्रतिम शस्त्रकला की चर्चा हो रही है। पर तुम क्या विशेष थके हुए हो पुत्र?

सिद्धार्थ तनिक भी नही।

बलाधिकृत तब यह एकान्त सेवन क्यो? यह गम्भीर चिन्तन क्या? और यह विषण्ण मुखमुद्रा क्या?

सिद्धार्थ आर्य अत्यन्त स्नेह के कारण ऐसा विचारते हैं। परन्तु (रुककर और बात अधूरी छोडकर) अरे, महामात्यचरण इधर ही पधार

रहे हैं। आय, हम आगे बढ़कर अमात्यचरणा की अभ्यर्थना करनी चाहिए।

बलाधिकृत यही उचित शिष्टाचार होगा पुत्र!

[दोनो के चलने की पदचाप]

सिद्धार्थ अमात्यचरण का अभिवादन करता हूँ।

अमात्य स्वस्ति आयुष्मन्। तुम आज आखेट म विजय प्राप्त कर आए, इस समाचार से अन्त पुर म विशेष उल्लास हो रहा है। महिषी की इच्छा है कि आज सभी राजकुमारियाँ समुपस्थित हैं। कुमार उन्हें अपने हाथ स रत्नभाण्ड प्रदान कर प्रतिष्ठित करें।

सिद्धार्थ (लजाकर) जैसी मातचरण की आज्ञा।

[तीनो के चलने की पदचाप, मन्द वाद्य ध्वनि]

दृश्य तीन

नेपथ्य मे उषा की स्वर्णिम रश्मि रेखा की भाँति सबके अन्त मे कोली राजनन्दिनी यशोधरा ने कक्ष म प्रवेश किया। मानो, उन्हें देखते ही कुमार सिद्धार्थ का चिरनिद्रित यौवन जाग्रत हो उठा। वह धीरे धीरे सौरभ आलोक और शोभा बिखेरती हुई व्यासपीठ तक पहुँचकर कुमार के सम्मुख खडी हो गई। वह सिमट रही थी और झुक रही थी। न जाने अविकसित यौवन के भार से, अथवा लज्जा के भाव से। वह सम्मुख खडी होकर भूमि पर दृष्टि गडाए पदनख से धरती पर बिछे स्फटिक प्रस्तर पर रेखा खींचने का असफल प्रयास कर रही थी। कुमार चित्रलिखित से उसे देखते रह गए। वे जागृत ही प्रसुप्त से थे। कुमार के निकट खडे महामात्य ने कहा—

महामात्य कोली राजनन्दिनी को भाण्ड प्रदान करो आयुष्मान्!

सिद्धार्थ (घबराकर अस्त-व्यस्त स्वर मे) शुभे, तुमने अतिविलम्ब कर दिया! भाण्ड तो सभी वितीर्ण हो चुके। (रुककर) किन्तु यह मणिपाल

नेपथ्य मे कुमार ने अपने कण्ठ म मणि माला उतारकर राज राजनन्दिनी के कण्ठ म डाल दी। कुमारी ने दृष्टि उठाकर कुमार के प्रदीप्त

मुखमण्डल को देखा—वे पत्ते की तरह काँपने लगी। उनका मुह प्रस्वेद से भीग गया। कुमार जड़वत् खड़े थे—हठात

[शख ध्वनि और भुशुण्डिकाओ का गजन]

सिद्धार्थ आय यह क्या हुआ? अरे, अमात्यचरण कहाँ चले गए? राजकुमारी राजकुमारी! (कोमल स्वर म) राजनन्दिनी क्या प्रतिदान की अभिलाषिणी हैं?

नेपथ्य मे कोलिय राजकुमारी पुष्पभार से झुकी हुई, लतिका की भाति अकेली ही उनके सम्मुख खडी थी। कुमार का वाक्य सुनकर उनके अधरोष्ठ पर एक क्षीण हास्य रेखा और कपोलो पर लाली आई और गई। उन्होने नतजानु होकर मद स्वर मे कहा—

राजकुमारी कुमार प्रसन्न हो!

[जाने की हल्की पदचाप]

दृश्य चार

नेपथ्य मे क्या हम प्रेम की व्याख्या करें? उस प्रेम की जहा सम्पत्ति प्रेम की माध्यम नही है, जहाँ केवल प्राणो मे प्राणो का लय है। जो नेत्र पटल पर तोला नही जाता, केवल आत्मा जिसमे विभोर होती है। जो जीवन से मृत्यु तक, और मृत्यु से परे भी वैसा ही पारिजात कुसुम की तरह अक्षय विकसित रहता है। वासना का यह सम्पक नही भोग और तप्ति का यहाँ प्रसग नही। अभिलाषा और अरुचि दोनो ही यहा नही। जहाँ दुख नही आनन्द ही आनन्द है। जहाँ कुछ भी प्राप्त करने की अभिलाषा नही, सब कुछ प्राप्त है। दाम्पत्य जीवन मे यह प्रेम किस महाभाग ने प्राप्त किया?

गौतम (यशोधरा का आँचल खीचकर) अब बस करो प्रिये! चगेरी तो भर चुकी। अब इन पुष्पो को लताओ म इसी तरह विकसित छोड दो, जिससे कल तक तो खिले रह सकें। देखो, जिन डालियो से पुष्प तुम तोड चुकी हो, वे कितनी अशोभनीय हो गई हैं।

यशोधरा होने दो आयपुत्र, ये कल फिर फूलो से लद जाएँगी। यह तो इनका प्राकृतिक स्वभाव है। आप व्यथ ही इतना विषाद करते हैं।

गौतम व्यथ ? नही नही, प्रिये ! इन कुसुम-लतिकाओं के प्रति तुम्हारा आचरण नितान्त निष्ठुर है। अभी प्रात काल तो तुम इन्हें अपने हाथों सींच रही थी, सो क्या इसीलिए ?

यशोधरा और नही तो क्या आर्यपुत्र ? क्या मुझे ऐसी ही निःस्वार्थ समझ बैठे हैं। मैंने सींचा है तो मैं फूल भी चुनूँगी। यह तो जगत की गति है और निष्ठुर आचरण क्या इतना ही, अभी तो मैं सूची से इन्हें बींधकर माला गूँथूँगी। ये यूथिका, चम्पा, मालती और कुन्द क्या यों ही अस्त-व्यस्त चंगेरी में पड़े रहेंगे, जैसे आर्यपुत्र के विचार।

गौतम उलाहना मत दो प्रिये ! तुम्हें तो उदार होना चाहिए। तुम तो राजनन्दिनी हो। हाय-हाय ! क्या तुम इन कोमल पुष्पों को सुई से विद्ध भी करोगी ?

यशोधरा आर्यपुत्र देखते रहें, मैं एक एक को विद्ध करूँगी। मैं राजनन्दिनी हूँ। पालन करना, कर ग्रहण करना और दण्ड विधान से शासन और सुव्यवस्था बनाए रखना मेरा कर्त्तव्य है। जल से सिंचन करके मैंने इनका पालन किया, पुष्प चयन करके कर ग्रहण कर रही हूँ, और अब सूची-वेध के बल इन्हें सुव्यवस्थित करके माला बनाऊँगी। फिर वह आर्यपुत्र के वक्ष स्थल पर सुशोभित होगी, और मेरे परिश्रम का वेतन मुझे प्राप्त होगा। (हँसती है।)

गौतम (दृढ स्वर में) पर मैं विद्रोह करूँगा। अब मैं तुम्हें अधिक यह शोषण न करने दूँगा। प्रिये चाहो तो मुझे दण्ड दो।

यशोधरा (हँसती हुई) अच्छी बात है। तो मैं आपको इन भुजवल्लरियों मे बाँध लेती हूँ।

नेपथ्य मे यशोधरा ने कुमार के कण्ठ मे कोमल भुज मृणाल डाल दिये। कुमार के अन्तस्तल मे सदैव जाग्रत प्रबुद्ध सत्ता उस मद से क्षण भर को मूर्च्छित हो गई। उन्होंने पत्नी को प्रगाढ आलिंगन मे कस लिया।

यशोधरा (हँसकर) आर्यपुत्र स्मरण रखें कि यह अनुग्रह वेतन मे नही काटा जाएगा, पुरस्कार मात्र समझा जाएगा।

गौतम (हँसकर) गोपा प्रिये, उस दिन तो तुम इतनी चपला नही थी, जिस दिन भाण्ड वितरण

यशोधरा (बात काटकर) आर्यपुत्र के पास इस बात का क्या प्रमाण है कि मैं वही बालिका हूँ ?

गौतम वही तो हो प्रिये ! ये नेत्र और ये ही अधरोष्ठ। इन्हें क्या मैं

भूल सकता हूँ। ओह, इन्ही ने तो मुझे ठगा। ओफ! (गम्भीर चिन्ता मे मग्न हो जाते हैं।)

यशोधरा (व्याजकोप से) आपको भ्रम हुआ है। वे थी कोलीराज नन्दिनी यशोधरा। और मैं हूँ भगवती गोपा—शाक्य सिंहासन की युवराज्ञी।

गौतम अच्छा प्रिये, अब चलो, प्रासाद मे चलें। सूर्य अस्त हो रहा है। तुम्हे शीत का भय है।

यशोधरा जैसी आर्यपुत्र की आज्ञा।

[दोनो जाते हैं।]

दृश्य पाँच

[कोई रात्रि का पक्षी रुक-रुककर बोल रहा है। कभी-कभी हवा के झोंके का शब्द]

गोपा अर्द्ध रात्रि तो व्यतीत हो गई। त्रिशिरा नक्षत्र आकाश के मध्य भाग मे आ गया। आर्यपुत्र क्या अभी शयन न करेंगे?

गौतम ओह प्रिये, तुम अभी तक जाग रही हो!

गोपा सारा ससार मोहमयी निद्रा म शयन कर रहा है आर्यपुत्र।

गौतम हाय, यह कैसे दु ख की बात है!

गोपा कैसा अन्धकार है!

गौतम पर मेरा हृदय प्रकाशित है।

गोपा पर स्वामिन, आपके इतने निकट रहकर भी, मैं उस प्रकाश की एक किरण भी नही देख पाती हू।

गौतम मैं तो उसे ससार के प्राणि मात्र को दिखाने की बात सोच रहा हूँ।

गोपा इस स्तब्ध अन्ध निशा मे?

गौतम अन्ध निशा तो मानव हृदय मे ओत प्रोत है। तुम समझती हो, जब सूर्योदय होगा, तब वह छिन्न भिन्न हो जाएगी?

गोपा मैं मूर्खा स्त्री क्या समझू भला!

गौतम नही गोपा, आत्म प्रतारण की आवश्यकता नही। पर इस बात को तो सोचो। मानव-आत्मा न जाने कब से इसी प्रकार सो रही है, जैसे इस समय ससार, और वह उसी प्रकार अंधकार म

व्याप्त है, जैसे इस समय यह पृथ्वी। यह निद्रा और अंधकार कुछ समय मे दूर हो जाएगा, उषा का उदय होगा, जगत सुंदर हो उठेगा। प्रकृति भांति-भाँति का रंग शृंगार करेगी। आलोक से आकाश और भूलोक शोभायमान होगा! आहा! कैसी सुन्दर बात है। परन्तु मानव-हृदय का अंधकार और सुषुप्ति तब भी दूर न होगी। वह अक्षय अंधकार, यह चिर मोहनिद्रा मनुष्य पर अभिशाप है। मनुष्य जाति के इस दुर्भाग्य पर तुम्हें करुणा नही आती प्रिये!

गोपा और इस अनन्त मानव समुदाय में अकेले आर्यपुत्र ही जाग्रत हैं?

गौतम प्रिय, व्यंग्य क्या करती हो?

गोपा अच्छा आर्यपुत्र, आप इस अंधकार मे जाग्रत रहकर किस सौभाग्य की आशा करते हैं? इस अंधकार मे तो जाग्रत पुरुष की अपेक्षा सुख से सोये पुरुष ही अधिक भाग्यशाली हैं।

गौतम (उत्तेजित स्वर मे) किन्तु उनका कभी प्रभात न हो तो? उस निद्रा का कभी अवसान न हो तो?

[गोपा निरुत्तर बैठी रहती है।]

प्रिये, यदि मैं अपने प्रकाश की रेखा से इस अंधकार को छिन्न छिन्न कर सकूँ—जाग्रत होकर मानव समाज सुंदर आलोक देखे, तो? गोपा, तब क्या हमारा जीवन धन्य न होगा?

गोपा अवश्य।

गौतम तब इसके लिए हृदय विदीर्ण करना होगा।

गोपा (भीतर मुद्रा से) विदीर्ण? (कुछ रुककर स्वगत भाव से) हृदय विदीर्ण करना होगा। हृदय विदीर्ण

[देर तक रोने और सिसकियाँ लेने का शब्द]

दृश्य छह

[बदली हुई वाद्य-ध्वनि]

गौतम देखो प्रिये, यह क्या हो रहा है।

गोपा आर्यपुत्र का अभिप्राय क्या है?

गौतम उस फूल की ओर देखो तनिक, अभी कुछ देर पूर्व सूर्य की किरणों ने इसे छुआ था और वह खिल पड़ा। अब सूर्य तो अस्त

हो रहा है और यह मुरझा कर डाली पर झुक गया है। अब यह सूखकर झड़ जाएगा।

गोपा आयपुत्र इस पुष्प के प्रति विशेष आकृष्ट हैं!

गौतम गोपा प्रिये, मनुष्य का जीवन भी ऐसा ही है।

[गहरे गहरे साँस लेने का शब्द और मौन]

गोपा (घबराई आवाज में) आयपुत्र अब क्या सोच रहे हैं?

गौतम (चौंककर) आह, कुछ भी तो नहीं प्रिये। आज मैं नगर में गया था। वहाँ मैंने राजपथ पर एक पुरुष देखा, जो एक लाठी के सहारे बड़े कष्ट से चल रहा था। उसके नेत्र इतने विभ्रम थे कि उनकी अपेक्षा नेत्र न होते तो हानि न थी। दाँत सभी गिर गए थे। उससे उसका मुख तो विकृत हो ही गया था, वाणी भी अस्पष्ट हो गई थी। उसकी खाल ढीली होकर लटक गई थी और हड्डियाँ चमक रही थी। उसका अंग-अंग काँप रहा था। वह बड़े चाव से मेरी ओर देख रहा था। मैं उसके निकट गया। उसने काँपते-काँपते हाथ को ऊपर उठाकर मेरा अभिवादन किया, और कहा—'कुमार, एक दिन मैं तुमसे भी अधिक सुन्दर था और एक दिन तुम भी ऐसे ही हो जाओगे।' मैंने सोचकर देखा—उसका कथन सत्य हो सकता था।

गोपा (भरे हुए कण्ठ से) आयपुत्र!

गौतम कुछ और आगे चलने पर मैंने एक और हृदय द्रावक दृश्य देखा। एक पुरुष को लोग उठाकर ले जा रहे थे। मैंने उन्हें रोककर पूछा—यह क्या है? उन्होंने कहा—यह आदमी मर गया है। मैंने उसे देखा। वह न हिल सकता था, न बोल सकता था। उसमें प्राण नहीं थे। वे उसे भस्म करने को ले जा रहे थे। एक ने कहा—अन्त में सभी को यही भोगना पड़ेगा।

गोपा हाय आयपुत्र!

गौतम (कातर कण्ठ से) यह कैसी भयानक बात है! राजा और रंक यहाँ विवश हैं। क्या इस दुःख से छूटने का कोई उपाय ही नहीं है? फिर ये सुख? राजप्रासाद? धन और अधिकार? क्या ये विडम्बना मात्र नहीं हैं? जब ये चिरस्थायी ही नहीं—जब उस अवश्यम्भावी अवस्था के प्रतिकार में ये समर्थ ही नहीं तब? (जोर से पुकारकर) प्रिये गोपा! तब?

गोपा (भयभीत मुद्रा में) आयपुत्र, आयपुत्र!

वह सरस कैसे होगा? गोपा के प्रेम-पाश को तोडने म मैं कितना बल लगा चुका। वह टूटा नही। अब यह पुत्र! अरे, कैसा सुदर है! यह इसे केवल एक बार देखने के लिए मैंने समस्त सयम नष्ट कर दिया। वह स्वण की दीप्त कान्ति धारण करने वाले अद्ध निमीलित नत्र, छोटा-सा मुख, मानो मेरी ही एक सजीव छाया मुझसे पृथक परन्तु मेरे प्राणा की एक कोर। मैंने प्राण दिए, और गोपा न शरीर। गोपा के समान सुदर और प्रिय, कोमल और रुचिर। अरे, वह मेरा पुत्र है। हम दोना के प्राण और शरीर जिस महायोग मे एक राशि पर आए, उस इद्रियातीत आनन्द का आदान प्रदान जिस क्षण हुआ, उसकी ऐसी स्थायी स्मति? गोपा, जादूगरनी, यह क्या किया। मैंने उसे गोद मे उठाया, गोपा का वह मूक अनुरोध अप्रतिम उल्लास, जसे उसके प्राण ही नत्रो म आ गए थे, जब उसने उस पुत्र को मेरी गोद मे देकर चरण चुम्बन किये। गोपा ने कहा था—उसके नेत्र मेरे ही जैसे हैं। अरे, कही मैंने ही तो जन्म नही लिया है। नही तो अबोध बालक पर मेरी इतनी ममता क्यो होती?

नेपथ्य मे गम्भीर रात्रि मे गौतम इन विचारो मे डूबे हुए उपवन मे टहल रहे थे। कोमल शय्या पर उन्हे नीद नही आ रही थी। कभी वे स्वय ही अपनी आहट से चौंक उठते। उनके मुह से फिर ये शब्द निकले—

गौतम अरे, यह कैसा सुख, यह कैसा सौभाग्य जिसमे निद्रा का भी नाश हो गया। सारा ससार सो रहा है। अहा, यही तो चिन्तनीय विषय है! जो सुख है वह ही दुख का मूल है। कोई भी ऐसा मनुष्य नही जो मानव जीवन की इस कठिन व्याधि का उपाय जानता हो।

नेपथ्य मे सिद्धाथ एक जामुन के वृक्ष के नीचे बैठकर जीवन, मरण और उत्पत्ति के विचार म मग्न हो गए। उस अभेद्य अधकार मे उनके दिव्यचक्षु खुल गए। उनसे उन्होंने देखा, दुखदायी मत्यु अनिवाय है। फिर भी लोग अज्ञान के अधकार मे ही जीवन व्यतीत करते हैं। सत्य की खोज नही करते। कुमार का हृदय जीव दया से भर गया। हठात् उन्होंने देखा, सम्मुख [illegible] के नीचे एक गम्भीर महापुरुष खडे हैं।

गौतम तुम कौन हो भाई?

गौतम (उतावली से) प्रिये, कोई गूढ़ वस्तु कहीं छिपी है।

गोपा (सहमती हुई) क्या इस राजसम्पदा से, अधिकार सत्ता से भी अधिक ?

गौतम (शान्त स्वर में) हां।

गोपा इस, यौवन, सौन्दर्य और आनन्द से भी अधिक ?

गौतम हां।

गोपा आपकी इस चिर किंकरी से भी अधिक।

गौतम आह गोपा प्रिये ! ठहरो ! वह गूढ़ वस्तु हम प्राप्त करनी चाहिए।

गोपा और वह है कहां ?

गौतम मैं उसे ढूंढूंगा। वह मनुष्य मात्र के दुःख को दूर करने की तालिका होगी।

[कुछ देर सन्नाटा]

गोपा उठिए आर्यपुत्र, हो गया आपका नगर निरीक्षण, अब आप मेरी सारिका का भी निरीक्षण कीजिए। देखिए, यह आपकी तरह मेरा नाम पुकारना सीख गई है। आज आपको उस मयूर के जोड़े को स्वयं भोजन कराना होगा। इसके सिवा आज आप अधिक निरीक्षण न कर पाएंगे। अभी से शयन-कक्ष में चलना होगा।

गौतम (ठण्डी सांस लेकर) अच्छा प्रिये, तुम्हारी ही बात रहे।

दृश्य सात

[बहुत से शंख और घड़ियाल बज रहे हैं। दूर पर स्त्रियों के मंगल गान का अस्फुट स्वर। कई मनुष्य बात कर रहे हैं कि कुमार सिद्धार्थ के पुत्र उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार की बातचीत की अस्फुट अभिव्यक्ति गौतम एकान्त में टहल रहे हैं—वातावरण बदलता है शोरगुल कम होता है, एकाध पक्षी बोल उठता है। कोयल कूक रही है।]

पुत्र ! यह तो एक नया बन्धन उत्पन्न हो गया। गोपा क्या कम थी। वह आनन्द और हास्य का मधुर अमृत एक क्षण भी मुझे नीरस नहीं रहने देना चाहती। परन्तु जो स्वभाव से नीरस है

वह सरस कैसे होगा ? गोपा के प्रेम-पाश को तोडन मे मैं कितना बल लगा चुका। वह टूटा नही। अब यह पुत्र ! अरे, कैसा सुदर है ! यह इसे केवल एक बार देखने के लिए मैंने समस्त सयम नष्ट कर दिया। वह स्वण की दीप्त काति धारण करने वाले अद्ध-निमीलित नत्र, छोटा सा मुख, मानो मेरी ही एक सजीव छाया मुझसे पृथक, परन्तु मेरे प्राणो की एक कोर। मैंने प्राण दिए, और गोपा ने शरीर। गोपा के समान सुदर और प्रिय, कोमल और रुचिर। अरे, वह मेरा पुत्र है। हम दोनो के प्राण और शरीर जिस महायोग म एक राशि पर आए, उस इन्द्रियातीत आनन्द का आदान प्रदान जिस क्षण हुआ, उसकी ऐसी स्थायी स्मृति ? गोपा, जादूगरनी, यह क्या किया। मैंने उसे गोद मे उठाया, गोपा का वह मूक अनुरोध, अप्रतिम उल्लास, जैसे उसके प्राण ही नत्रो मे आ गए थे, जब उसने उस पुत्र को मेरी गोद मे देकर चरण चुम्बन किये। गोपा ने कहा था—उसके नेत्र मेरे ही जसे हैं। अरे, कही मैंने ही तो जन्म नही लिया है। नही तो अबोध बालक पर मेरी इतनी ममता क्या होती ?

नेपथ्य मे गम्भीर रात्रि म गौतम इन विचारो म डूबे हुए उपवन मे टहल रहे थे। कोमल शय्या पर उन्ह नीद नही आ रही थी। कभी वे स्वय ही अपनी आहट से चौंक उठते। उनके मुह से फिर ये शब्द निकले—

गौतम अरे, यह कैसा सुख, यह कैसा सौभाग्य जिसमे निद्रा का भी नाश हो गया। सारा ससार सो रहा है। अहा, यही तो चिन्तनीय विषय है ! जो सुख है वह ही दुःख का मूल है। कोई भी ऐसा मनुष्य नही जो मानव जीवन की इस कठिन व्याधि का उपाय जानता हो।

नेपथ्य मे सिद्धाथ एक जामुन के वक्ष के नीचे बैठकर जीवन, मरण और उत्पत्ति के विचार म मग्न हो गए। उस अभेद्य अधकार म उनके दिव्यचक्षु खुल गए। उनमे उन्होंने देखा, दुखदायी मृत्यु अनिवाय है। फिर भी लोग अनान के अधकार मे ही जीवन व्यतीत करते हैं। सत्य की खोज नही करते। कुमार का हृदय जीव-दया से भर गया। इठात उन्होंने देखा [illegible] के नीचे एक गम्भीर महापुरुष खडे हैं।

गौतम तुम कौन हो भाई ?

व्यक्ति मैं श्रमण हूँ।

गौतम तुम कहा से आये हो?

श्रमण मैं बुढापे के दु खा और रोग की पीडा तथा मत्यु के भय से घर द्वार त्याग कर निकला हूँ। मै मुक्ति का अ वेषक हूँ, क्योकि ससार के सब पदाथ नाशवान हैं। केवल सत्य ही नष्ट नही होता। प्रत्येक वस्तु बदलती रहती है, कोई भी पदाथ स्थिर नही है। मैं अक्षय आन द को ढूढ रहा हूँ। मैंने ससार को त्याग दिया है और इ द्रिया को जीत लिया है।

गौतम मै भी इद्रियो के विषया की निस्सारता को भली भाँति समझ गया हू। भोग से मुझे घृणा हो गई है। मेरा जीवन मुझे शू य दीखता है। क्या तुम बता सकते हो कि इस अशा त जगत म शान्ति कहाँ मिल सकती है?

श्रमण जहाँ उष्णता है वहा शीतलता भी है। पर महत्कल्याण के हेतु महत्श्रम भी करना चाहिए। तुम्हे निर्वाण की ओर जाना चाहिए। निर्वाण सरोवर मे स्नान करने से सारे पाप ताप दूर हो सकते हैं।

गौतम तुम्हारे वचन शुभ हैं श्रमण। पर मेरे पिता और पत्नी घराने की कीर्ति के इच्छुक हैं।

श्रमण धर्मा वेषण का समय वही है, जब उसका ज्ञान हो। वे सब ब धन तोड दो कुमार सिद्धाथ, जो धम प्राप्ति म बाधक हो। तुम महान् हो, तुम तथागत हो। दखो, सत्य की पराकाष्ठा तक पहुँचाना। जिस प्रकार सूय सब ऋतुओं मे स्थिर होकर अपन नियमित माग पर ही चलता है उसी प्रकार तुम भी सत्य-पथ पर अटल रहना। तुम बुद्ध होगे। तुम लक्ष लक्ष मनुष्या की बुद्धि को शुद्ध कराग। तुम जगत मे पथ प्रदशक बनोगे। तुम्हारी जय हो महाश्रमण! तुम्हारा कल्याण हो तथागत!

गौतम अहा, मैंन सत्य का साक्षात् कर लिया है, मैं अब ब धनों को तोडूँगा। मैं बुद्धत्व प्राप्त करूँगा।

[म द स्वर म घण्टी बजती है। कुछ देर तक बजती रहती है।]

दृश्य आठ

नेपथ्य मे — माता और पुत्र सुख की नीद म बेसुध सो रहे हैं। गोपा के अरुण अधर पर हास्य की एक रेखा फैल रही है और उनके बीच कुन्द-कली से दात चमक रहे हैं। वह कोई सुख स्वप्न देख रहा है। कुमार सिद्धार्थ क्लान्त भाव से खड़े खड़े यही सोच रहे हैं। गोपा का एक हाथ शिशु के वक्ष पर है। उस सुगन्धित कक्ष मे शिशु का छोटा किन्तु मोहक मुख दीप्त हो रहा है। सिद्धार्थ एकटक यह सब देख रहे हैं—उनके नेत्रो से अश्रुधारा बह रही है।

सिद्धार्थ — (स्वगत, मन्द स्वर मे) मैं सकल्प पर स्थिर रहूँगा। (कुछ रुककर अवरुद्ध कण्ठ मे) आह, इस शोकावेग को रोकना कितना कठिन है।

[तन्तु वाद्य की झनकार]

नेपथ्य मे — वे आगे बढकर घुटनो के बल शय्या के पास बैठ गए है। वे शिशु का मुह चूमने को झुके—परन्तु रुक गए।

गौतम — यह कही जाग न जाए।

नेपथ्य मे — वे सोते हुए माता और पुत्र को एकटक देख रहे हैं, उनकी आँखो से आसू वेग से उमड रहे हैं। (क्षणभर रुककर) लो, वे उठ खडे हुए। वे वह दुर्धर्ष साहस करने जा रहे हैं जो पृथ्वी पर किसी तरुण ने आज तक नही किया। देखो देखो, वे दोनो हाथो की मुट्ठी बाधे सुदूर आकाश मे स्तब्ध तारागणो की ओर और कभी एक दृष्टि गोपा के स्निग्ध यौवन और शिशु के भोले मुखडे पर डाल रहे है।

[कोयल की कुहू दो बार]

लो, वे चल दिये। सिद्धार्थ कुमार महाभिनिष्क्रमण कर रहे हैं। वे जा रहे हैं—घर बार, राज्यभोग, महल-अटारी, धन, रत्न, पत्नी पुत्र सबको त्यागकर। सबको त्यागकर! पृथ्वी पर अधकार छा रहा है। आकाश म तारे टिमटिमा रहे हैं। (जाने की पदचाप) वे जा रहे हैं महान् प्रकाश की खोज मे।

[कोई एक पक्षी बोलता है]

गौतम छन्न, छन्न, क्या तुम जग रहे हो ?

छन्न (घबराकर) परम परमेश्वर महाभट्टारक महाराज कुमार

गौतम छन्न, एक घोड़ा तो ले आओ।

छन्न जैसी आज्ञा

[कुछ देर तन्तु वाद्य]

घोड़ा उपस्थित है कुमार !

गौतम तो चलें, अंधकार के उस पार—जहाँ अक्षय प्रकाश है।

[घोड़े के जाने की क्षीण होती हुई पद ध्वनि]

दृश्य नौ

[कुछ देर घोड़े की टापों की निरन्तर आवाज आ रही है। सहसा आवाज रुक जाती है।]

गौतम यही स्थान ठीक है। यह सघन वट वृक्ष है। यह निर्जन स्थान है।

छन्न कुमार क्या चाहते हैं ?

गौतम लो, सँभालो भाई, ये आभूषण, यह दुकूल, यह उत्तरीय, कुण्डल, यह वलय, यह किरीट।

छन्न स्वामी, यह क्या कर रहे हैं ?

गौतम वह कटार तो दो तनिक छन्न।

छन्न यह कटार उपस्थित है स्वामी।

गौतम तो अब इन सघन-सुगन्धित केशों की क्या आवश्यकता है ? यह लो। (बालों को काटते हैं।)

छन्न हाय हाय, हाय ! आप यह क्या कर रहे हैं, प्रभु, ऐसे सुन्दर केश काट डाले !

गौतम लो यह कटार, यह तलवार भी लो।

छन्न (रोते हुए) दुहाई महाराज कुमार। महाराज

गौतम घोड़ा भी ले जाओ छन्न, अब तथागत पैदल जाएगा।

छन्न (रोते हुए) मैं आपके चरणों को छोड़कर कभी नहीं जाऊँगा प्रभु कभी नहीं जाऊँगा। (जोर जोर से रोता है।)

गौतम शोक न करो वत्स। आनन्दित हो। मैं सत्य की खोज में जा रहा

हूँ। जगत् को आनन्द प्रदान करने के लिए। पृथ्वी के मनुष्यों को अन्धकार से प्रकाश में लाने के लिए।

चन्न महाराज, महाराजकुमार ! (जोर जोर से रोता है।)

गौतम जाओ वत्स, हठ न करो। पिताजी को धैर्य प्रदान करना। गोपा को धीरज दिलाना। लो, मैं चला।

[चलने की क्षीण होती हुई पदचाप]

चन्न (रोते हुए) आप जा रहे हैं, महाराज कुमार, यह कैसा तेज प्रकट हुआ। सत्य के प्रचण्ड प्रकाश से दिशाएँ दीप्त हो रही हैं, यौवन सौन्दर्य पवित्र तेज में परिवर्तित हो गया है। चमत्कार है, चमत्कार है, अद्भुत है ! हे प्रभु, हे स्वामी ! (पछाड़ खाकर गिरता है।)

[पदचाप मन्द होकर विलीन हो जाती है।]

दृश्य दस

[कुछ देर तन्तु-वाद्य बजता रहता है।]

नेपथ्य में राजगृह में लोग आश्चर्य और उत्सुकता से मध्याह्न में एक तरुण भिक्षु की प्रतीक्षा करते हैं। गृहस्थों के भोजन कर चुकने पर वह तरुण भिक्षु नगर की गलियों में भिक्षा माँगने निकलता था। उसका प्रभावान मुखमण्डल, विनम्र गति, पृथ्वी पर झुके हुए नेत्र, और ओष्ठ-सम्पुट से निकलने वाली मृदु मधुर ध्वनि 'कल्याण' नगर निवासियों के कौतूहल का विषय थी। वे प्रत्येक घर से केवल एक ग्रास भोजन ग्रहण करते और बारह ग्रास लेकर नगर से बाहर चले जाते।

[जन-कोलाहल। दूर से शब्द ध्वनि]

वह वही भिक्षु आ रहा है। अहा, तपाए स्वर्ण सी उसकी अंगद्युति है। अरे, वह कोमल भावुक सुकुमार तरुण क्या भिक्षु होने योग्य है अभी, वह राजकुमार है ! हट जाओ भाई, भिक्षु राज के लिए मार्ग छोड़ दो। अजी, इस महामुनि को एक ग्रास अन्न देकर हम भी कृतार्थ हुआ चाहते हैं। कल्याण कल्याण-कल्याण !

अरे, साक्षात सम्राट बिम्बसार इस तरुण भिक्षु का अभिनन्दन कर रहे हैं। सुनो, सुनो! सम्राट कह रहे हैं—तरुण भिक्षु तुम्हारे हाथ राज्य रज्जु शोभा देती है, भिक्षापात्र नही। तुम्हारा सुकोमल शरीर और नवीन तारुण्य तपस्या के योग्य नही है। श्रेष्ठ और ज्ञानी पुरुषो को शक्तिसम्पन्न होना चाहिए। धर्म खोकर धनी होना उत्तम नही। पर धन, धर्म और शक्ति पाकर जो इन्हे दूरदर्शिता से भोग करे, वही बुद्धिमान है।

गौतम राजन आप धर्मात्मा और विवेकी हैं। आपका कथन सत्य है। पर मैं निर्वाण का इच्छुक हूँ। जिस सत्य के ज्ञान की अभिलाषा है उसे उन बातो मे विरक्त रहना चाहिए, जो चित्त को अपनी ओर खीचती हैं। उसके लिए काम, क्रोध लोभ, मोह, अधिकार और वासनाओ का त्याग करना आवश्यक है। मैंने वैभव की असारता को समझ लिया है और अब मैं अमृत के धोखे मे विषपान नही करूँगा। सम्राट, आप मेरे ऊपर करुणा करने का कष्ट न उठाइए। करुणा के पात्र वे हैं जो ससार की चिन्ताओ मे दिन-रात व्याकुल रहते हैं। जिनके हृदय मे न शान्ति है, न मन मे एकाग्रता। हे राजन, कहिए तो एक राजा और एक भिक्षुक की मृतक देह मे क्या अन्तर है?

सम्राट हे त्यागी, आप धन्य हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। कामना करता हूँ, आपकी कामना पूर्ण हो। परन्तु आप पूर्ण बुद्ध होने पर मुझे अपना शिष्य स्वीकार कर कृतार्थ करें।

गौतम ऐसा ही हो सम्राट्।

दृश्य ग्यारह

[कुछ देर तक प्रचण्ड वायु के चलने का शब्द। वन पक्षियों का शब्द]

गौतम हे विद्वानो, क्या आप ही प्रसिद्ध दार्शनिक और तत्ववेत्ता आलार और उदरक हैं? मैं आपसे आत्मा के विषय मे जिज्ञासा करने आया हूँ।

दार्शनिक हे मुनि, हम वही हैं। तुम्हे जो सशय हो वह कहो।

गौतम मैं यह जानना चाहता हूँ कि आत्मा क्या है?

दार्शनिक आत्मा वह है जो देखता, चखता, सूंघता और छूता है। फिर भी वह न तुम्हारा शरीर है, न आंख कान नाक और मुख। आत्मा वह है जो त्वचा के द्वारा छूता है जिह्वा से रस लेता है, आंख से देखता है, और कान से सुनता है।

गौतम हे विद्वानो, आत्मा की मुक्ति क्या है?

दार्शनिक जिस प्रकार पक्षी पिंजरे से छूटकर स्वतन्त्रता प्राप्त करता है, उसी प्रकार आत्मा सब बन्धनो और उपाधियो से छूटने पर मुक्त हो जाता है।

गौतम परन्तु क्यो उष्णता अग्नि से भिन्न है? रूप, रस-वासना, संस्कार, बुद्धिचित्त का संपात ही 'मैं' है। वही 'मैं' आत्मा है। तब वह भिन्न सत्ता कैसे?

दार्शनिक परन्तु तरुण मुनि, तुम क्या कर्मफल को नही देखते जिसने मनुष्य के आचार विचार, अधिकार जाति और वैभव में भिन्नता उत्पन्न कर दी है।

गौतम विद्वानो, कारण ही से कार्य होता है, परन्तु 'अहं' की भिन्न सत्ता और शरीरोत्तर गमन का प्रमाण क्या है?

दार्शनिक हे मुनि, तुम अभी मूढ हो।

गौतम हे विद्वानो, तुम अभी और मनन करो।

दृश्य बारह

[निरन्तर तेज पहाड़ी हवा का गर्जन-तर्जन, वन्य पशु-पक्षियो का बीच-बीच मे शब्द जो प्रस्तावक के वक्तव्य के साथ साथ चलेगा।]

नेपथ्य मे मुनि सिद्धार्थ का बिल्ववन मे घोर तप करते छह वर्ष व्यतीत हो गए। उनका शरीर सूखकर कांटा हो गया। वे मृतप्राय हो गए।

[घण्टी का शब्द]

गौतम इन उपवासो और व्रतो से मुझे कुछ भी शान्ति न मिली। न दार्शनिको के थोथे तर्क से शान्ति मिली। यह सब मिथ्या है—मिथ्या अरे तुम कौन हो भद्रे?

नन्दा — मुनिवर, मैं गोपकन्या नन्दा हूँ। तपस्या से आप बहुत जर्जर हो गए हैं यह थोड़ी सी खीर है। भगवन्, यह खीर खाइए। आपको बल मिलेगा।

गौतम — तुम्हारा कल्याण हो भद्रे। लाओ, दो। (कुछ रुककर) अब मुझे नवजीवन मिला। कल्याण, कल्याण।

[जाने की पदचाप]

दृश्य तेरह

[भाँति भाँति के डरावने शब्द। बिजली की कड़क। पहाड़ों से वायु के टकराने का शब्द जो निरन्तर चलता।]

नेपथ्य में — *भगवत् गौतम बोधि वृक्ष के नीचे बैठे हैं। घोर अन्ध निशा है।* पृथ्वी कांपने लगी। प्रकाशपुंज ने मुनि गौतम को घेर लिया है। मार, जो विषयों का पोषक और मृत्यु का प्रेरक है तथा सत्य का शत्रु है आया है। (भयानक शब्द) अरे! अरे, उसके साथ उसकी तीनों पुत्रियाँ भी हैं। सम्मुख आकर मार ने भयानक गर्जना की (*गर्जना*) *मुनि शान्त बैठे हैं, यद्यपि* उसकी पुत्रियाँ बाण मार रही हैं। प्रबल जितेन्द्रिय हृदय में कोई तामसी इच्छा का उदय नहीं होता। देखो, देखो समस्त दुष्ट आत्माओं ने मुनि पर आक्रमण किया है। (एक साथ बहुत से कुत्सित शब्द और, फिर एकाएक सन्नाटा) अहो यह चमत्कार है—चमत्कार! *नारकीय ज्वालाएँ सुगन्धित पवन के झोंकों में* परिवर्तित हो गई। वज्रपात ने कमल पुष्प का रूप धारण कर लिया। (कोकिल की कूक) मार पराजित होकर भाग गया। मुनि गौतम तेज से परिपूर्ण है—वे बोल रहे हैं—सुनो, सुनो!

गौतम — (उत्तेजित स्वर में) धर्म सत्य है! धर्म ही मनुष्य को अज्ञान, पाप और दुखों से बचाता है। *जीवन विकास की बारह कड़ियाँ* हैं। आज से वे द्वादश निदान कहायेंगी। सत्य चतुष्टय ये हैं—दुःख, दुःख का कारण और दुःख की समाप्ति। अष्टांग मार्ग—जिन पर चलकर दुःखों का विनाश हो। (कुछ रुककर) अब मैं बुद्ध हूँ। मैंने धर्म को समझ लिया है। मैंने पापों पर

विजय पा ली है। मैं सम्यक् सम्बुद्ध हूँ। तथागत बुद्ध मैं बुद्ध हूँ।

दो अतिथि तथागत बुद्ध की जय हो।

बुद्ध तुम कौन हो भद्र ?

अतिथि प्रभु, मेरा नाम तपसु है, और इसका मल्लिक। हम व्यापारी हैं। यह चावल की रोटी और शहद लाए हैं। इसे ग्रहण कर बुद्ध तथागत हम कृतार्थ करें।

बुद्ध कल्याण हो तुम्हारा। हे सज्जनो, मैंने तुम्हारा भोजन ग्रहण किया। बुद्ध पद प्राप्त होने पर यह मेरा प्रथम भोजन है। हे धर्मात्माओ, तुम तथागत बुद्ध के प्रथम शिष्य हो। तथागत का कथन है कि—जगत का कोई अन्याय अत्याचार और पाप स्वार्थ से रहित नहीं है। सारे दोषों का मूल स्वार्थी मन के भीतर ही है। पाप न धरती में है, न आकाश में। न हवा में, न पानी में। न रात में, न दिन में। वह स्वार्थी मनुष्यों के मन में है। इसलिए स्वार्थ त्याग के बिना कोई यथार्थ सुख को अनुभव नहीं कर सकता। याद रखो, यथार्थ सुख स्वार्थ और भोगों में नहीं है, उनके त्याग में है।

अतिथि हे प्रभु, हम बुद्ध की शरण हैं। हम बुद्ध के धर्म को ग्रहण करते हैं।

बुद्ध कल्याण ! कल्याण !

दृश्य चौदह

[नगर का कोलाहल। भाँति भाँति की बातें।]

१ अजी वही राजकुमार मुनि फिर राजगृह में आया है।

२ यह पतियों को बहका बहका कर पत्नियों से पृथक् करता है।

३ यह वंशों का लोप करता है।

४ सारिपुत्र, मौद्गलायन, अश्वजित् आचार्य महाकश्यप, और उनके भाई सभी उस तरुण तपस्वी के शिष्य हो गए हैं।

५ अजी, विख्यात तत्त्वदर्शी महाधनपति यश भी उसकी शरण जा चुका है।

६ यही क्या, उसके चारों धन-कुबेर मित्र भी घर-बार छोड़ उसके शरणागत हुए हैं।

नंदा मुनिवर, मैं गोपकन्या नंदा हूँ। तपस्या से आप बहुत जर्जर हो गए हैं यह थोड़ी सी खीर है। भगवन्, यह खीर खाइए। आपको बल मिलेगा।

गौतम तुम्हारा कल्याण हो भद्रे। लाओ, दो। (कुछ रुककर) अब मुझे नवजीवन मिला। कल्याण, कल्याण!

[जाने की पदचाप]

दृश्य तेरह

[भाँति भाँति के डरावने शब्द। बिजली की कड़क। पहाड़ों से वायु के टकराने का शब्द जो निरन्तर चलेगा।]

नेपथ्य मे भगवन् गौतम बोधि वृक्ष के नीचे बैठे हैं। घोर अन्ध निशा है। पृथ्वी काँपने लगी। प्रकाशपुंज ने मुनि गौतम को घेर लिया है। मार, जो विषयों का पोषक और मृत्यु का प्रेरक है तथा सत्य का शत्रु है, आया है। (भयानक शब्द) अरे! अरे, उसके साथ उसकी तीनों पुत्रियाँ भी हैं। सम्मुख आकर मार ने भयानक गर्जना की (गर्जना) मुनि शान्त बैठे हैं, यद्यपि उसकी पुत्रियाँ बाण मार रही हैं। प्रबल जितेंद्रिय हृदय में कोई तामसी इच्छा का उदय नहीं होता। देखो, देखो, समस्त दुष्ट आत्माओं ने मुनि पर आक्रमण किया है। (एक साथ बहुत से कुत्सित शब्द, शोर फिर एकाएक सन्नाटा) अहा यह चमत्कार है—चमत्कार! नारकीय ज्वालाएँ सुगन्धित पवन के झोंकों में परिवर्तित हो गईं। वज्रपात ने कमल पुष्प का रूप धारण कर लिया। (कोकिल की कूक) मार पराजित होकर भाग गया। मुनि गौतम तेज से परिपूर्ण हैं—वे बोल रहे हैं—सुनो, सुनो!

गौतम (उत्तेजित स्वर में) धर्म सत्य है! धर्म ही मनुष्य को पाप और दुखों से बचाता है। जीवन विकास की बारह हैं। आज से वे द्वादश निदान कहलायेंगी। सत्य चतुष्टय हैं—दुख, दुख का कारण और दुख की समाप्ति। मार्ग—जिन पर चलकर दुखों का विनाश हो। (कुछ रुककर) अब मैं बुद्ध हूँ। मैंने धर्म को समझ लिया है। मैंने पापों

बुद्ध धम्म सरणम गच्छामि।
सघ धम्म सरणम गच्छामि।

दृश्य सोलह

[भेरी, तुरही और शख की ध्वनि। घोडो और रथों के दौडने का शब्द]

नेपथ्य मे सात बरस बाद बुद्ध कपिलवस्तु नगरी मे पधारे हैं। महाराज शुद्धोदन मन्त्रियो सहित बुद्ध के स्वागत को आए हैं। व अपने पुत्र के तेज और प्रतिष्ठा को देखकर प्रेमाश्रु बहा रहे हैं।

शुद्धोदन (स्वगत) निस्सदेह यही मेरा पुत्र है। पर यह महामुनि अब सिद्धार्थ नही रहा। वह बुद्ध है। पवित्रात्मा है। सत्य का स्वामी और मनुष्यो का शास्ता है। अरे सारथी, रथ रोक दो। इस मुनि-पुत्र के पास मुझे पाँव-प्यादे ही जाना उचित है।

जनता महाराज शुद्धोदन की जय हो। शाक्य गणपति की जय हो।

शुद्धोदन नही इस तरह नही—सब मनुष्यो के उद्धारकर्ता गौतम बुद्ध की जय हो!

हे पिता, मैं आपका पुत्र, अभिवादन करता हूँ।

(रोते हुए) अरे पुत्र, इच्छा होती है, तुम्हे एक बार तुम्हारे [illegible]रान नाम से पुकारूँ। आज मैंने तुम्हे सात बरस म बाद देखा [illegible] किन्तु नही। तुम तथागत हो। सम्यक सम्बुद्ध हो, सब [illegible] के उद्धारकर्ता हो। मगध-सम्राट बिम्बसार अपने अस्सी ग्रामपतियो और नागरो सहित तुम्हारा अनुगत शिष्य [illegible]

आपका बालक सिद्धार्थ हूँ। आपकी प्रसन्नता के [illegible]रूँ? कहिए।

[illegible] राज-पाट तुम्हे सौंपना चाहता था, पर देखता [illegible] तुच्छ समझते हो।

[illegible] हृदय प्रेमपूर्ण है, पर आपका जितना मुझ पर [illegible]ो यदि प्रजा के प्रत्येक व्यक्ति पर हो तो आपके [illegible] पुत्र मिल सकते हैं। आप अपने मन से अब [illegible] निकाल डालिए। आप अपने समान उस दुख

७ अब स्वयं सम्राट उसकी सेवा में आ रहे हैं।
सब चलो भाई चलो ! हम भी उस तपस्वी राजकुमार को देखें।

दृश्य पन्द्रह

[मनुष्यों की पदचाप। बहुत से आदमियों का जनरव।]

सम्राट हे शाक्यमुनि, क्या तुमने महाकश्यप को अपना गुरु बनाया है या वह महाज्ञानी तुम्हारा शिष्य हो गया है?

बुद्ध हे कश्यप ! तुमने कौन सा ज्ञान प्राप्त किया है, वह कौन सी बात है, जिसने तुम्हें अग्निहोत्र और कष्टदायक तपश्चर्या छोड़ कर बुद्ध की शरण आने पर बाध्य किया है। सम्राट यह जानना चाहते हैं।

कश्यप तो सम्राट सुनें। मैं तप और यज्ञ त्यागकर निर्वाण की प्राप्ति के लिए बुद्ध की शरण आया हूँ।

बुद्ध धर्मात्मा सम्राट, जिसने अहं को समझ लिया है, वह मन की उस अवस्था को प्राप्त कर लेता है जो पूर्ण शान्ति, परम पुरुषार्थ और सत्यज्ञान की दात्री है। सत्य के व्रती को सदा परहित कामना करनी चाहिए। इसी से निर्वाण प्राप्त होगा। यही बुद्ध का धर्म है।

सम्राट भगवन जब मैं राजकुमार था, तब कुछ भावनाएँ मेरे मन में थीं—एक मैं राजा होऊँ वह पूरी हुई, दूसरी बार बुद्ध मेरे शासनकाल में मेरे राज्य में पधारें, वह पूर्ण हुई। आपका सत्य महान है। आपने अव्यक्त को व्यक्त किया है। आपने अंधकार में भटकते हुओं के लिए दीपक जलाया है। आज मैं बुद्ध की शरण लेता हूँ—धर्म की शरण लेता हूँ—संघ की शरण लेता हूँ।

सारी प्रजा हम सब बुद्ध की शरण लेते हैं—संघ की शरण लेते हैं—धर्म की शरण लेते हैं—

बुद्ध तो आर्यो, इस प्रकार कहो—
'बुद्धं सरणम् गच्छामि।'

सब बुद्धं सरणम् गच्छामि।

बुद्ध संघं सरणम् गच्छामि।

सब संघं सरणम् गच्छामि।

बुद्ध धम्म सरणम् गच्छामि ।
सब धम्म सरणम गच्छामि ।

दृश्य सोलह

[भेरी, तुरही और शख की ध्वनि । घोडो और रथो के दौडने का शब्द]

नेपथ्य मे सात बरस बाद बुद्ध कपिलवस्तु नगरी मे पधारे हैं । महाराज शुद्धोदन मन्त्रियो सहित बुद्ध के स्वागत को आए हैं । वे अपने पुत्र के तेज और प्रतिष्ठा को देखकर प्रेमाश्रु बहा रहे हैं ।

शुद्धोदन (स्वगत) निस्सदेह यही मेरा पुत्र है । पर यह महामुनि अब सिद्धार्थ नही रहा । वह बुद्ध है । पवित्रात्मा है । सत्य का स्वामी और मनुष्यो का शास्ता है । अरे सारथी, रथ रोक दो । इस मुनि पुत्र के पास मुझे पाव-प्यादे ही जाना उचित है ।

जनता महाराज शुद्धोदन की जय हो । शाक्य गणपति की जय हो ।

शुद्धोदन नही इस तरह नही—सब मनुष्यो के उद्धारकर्ता गौतम बुद्ध की जय हो ।

बुद्ध हे पिता, मैं आपका पुत्र अभिवादन करता हूँ ।

शुद्धोदन (रोते हुए) अरे पुत्र, इच्छा होती है, तुम्हे एक बार तुम्हारे पुराने नाम से पुकारूँ । आज मैंने तुम्हे सात बरस के बाद देखा है । किन्तु नही । तुम तथागत हो । सम्यक सम्बुद्ध हो, सब मनुष्यो के उद्धारकर्ता हो । मगध-सम्राट बिम्बसार अपने अस्सी हजार ग्रामपतियो और नागरो सहित तुम्हारा अनुगत शिष्य हुआ है ।

बुद्ध हे पिता, मैं आपका बालक सिद्धार्थ हूँ । आपकी प्रसन्नता के लिए मैं क्या करू ? कहिए ।

शुद्धोदन पुत्र, मैं यह सारा राज-पाट तुम्हे सौपना चाहता था, पर देखता हू, राज्य को तुम तुच्छ समझते हो ।

बुद्ध हे पिता, आपका हृदय प्रेमपूर्ण है पर आपका जितना मुझ पर प्रेम है, उतना ही यदि प्रजा के प्रत्येक व्यक्ति पर हो तो आपको सिद्धार्थ से बढकर पुत्र मिल सकते हैं । आप अपने मन से अब मेरे लिए पुत्र भाव निकाल डालिए । आप अपने समक्ष उस बुद्ध

७ अब स्वयं सम्राट उसकी सेवा में जा रहे हैं।

सब चलो भाई चलो! हम भी उस तपस्वी राजकुमार को देखें।

दृश्य पन्द्रह

[मनुष्यों की पदचाप। बहुत से आदमियों का जनरव।]

सम्राट हे शाक्यमुनि, क्या तुमने महाकश्यप को अपना गुरु बनाया है या यह महाज्ञानी तुम्हारा शिष्य हो गया है?

बुद्ध हे कश्यप! तुमने कौन सा ज्ञान प्राप्त किया है, वह कौन सी बात है, जिसने तुम्हें अग्निहोत्र और कष्टदायक तपश्चर्या छोड़ कर बुद्ध की शरण आने पर बाध्य किया है। सम्राट यह जानना चाहते हैं।

कश्यप तो सम्राट सुनें। मैं तप और यज्ञ त्यागकर निर्वाण की प्राप्ति के लिए बुद्ध की शरण आया हूँ।

बुद्ध धर्मात्मा सम्राट, जिसने अहं को समझ लिया है वह मन की उस अवस्था को प्राप्त कर लेता है, जो पूर्ण शान्ति, परम पुरुषार्थ और सत्यज्ञान की दात्री है। सत्य के व्रती को सदा परहित कामना करनी चाहिए। इसी से निर्वाण प्राप्त होगा। यही बुद्ध का धर्म है।

सम्राट भगवन जब मैं राजकुमार था, तब कुछ भावनाएँ मेरे मन में थीं—एक मैं राजा होऊँ, वह पूरी हुई, दूसरी बार बुद्ध मेरे शासनकाल में मेरे राज्य में पधारें, वह पूर्ण हुई। आपका सत्य महान है। आपने अव्यक्त को व्यक्त किया है। आपने अंधकार में भटकते हुओं के लिए दीपक जलाया है। आज मैं बुद्ध की शरण लेता हूँ—धर्म की शरण लेता हूँ—संघ की शरण लेता हूँ।

सारी प्रजा हम सब बुद्ध की शरण लेते हैं—संघ की शरण लेते हैं—धर्म की शरण लेते हैं—

बुद्ध तो आर्यो, इस प्रकार कहो—
'बुद्धं सरणम् गच्छामि।'

सब बुद्धं सरणम् गच्छामि।

बुद्ध संघं सरणम् गच्छामि।

सब संघं सरणम् गच्छामि।

बुद्ध धम्म सरणम गच्छामि।
सब धम्म सरणम् गच्छामि।

दृश्य सोलह

[भेरी, तुरही और शख की ध्वनि। घोडो और रथो के दौडने का शब्द]

नेपथ्य मे सात बरस बाद बुद्ध कपिलवस्तु नगरी मे पधारे हैं। महाराज शुद्धोदन मन्त्रियो सहित बुद्ध के स्वागत को आए हैं। वे अपने पुत्र के तेज और प्रतिष्ठा को देखकर प्रेमाश्रु बहा रहे है।

शुद्धोदन (स्वगत) निस्सदेह यही मेरा पुत्र है। पर यह महामुनि अब सिद्धार्थ नही रहा। वह बुद्ध है। पवित्रात्मा है। सत्य का स्वामी और मनुष्यो का शास्ता है। अरे सारथी, रथ रोक दो। इस मुनि पुत्र के पास मुझे पाव-प्याद ही जाना उचित है।

जनता महाराज शुद्धोदन की जय हो। शाक्य गणपति की जय हो।

शुद्धोदन नही, इस तरह नही—सब मनुष्यो के उद्धारकर्ता गौतम बुद्ध की जय हो।

बुद्ध हे पिता, मैं आपका पुत्र, अभिवादन करता हूँ।

शुद्धोदन (रोते हुए) अरे पुत्र, इच्छा होती है तुम्हे एक बार तुम्हारे पुराने नाम से पुकारूँ। आज मैंने तुम्हे सात बरस के बाद देखा है। किन्तु नही। तुम तथागत हो। सम्यक सम्बुद्ध हो, सब मनुष्यो के उद्धारकर्ता हो। मगध-सम्राट बिम्बसार अपने अस्सी हजार ग्रामपतियो और नागरो सहित तुम्हारा अनुगत शिष्य हुआ है।

बुद्ध हे पिता, मैं आपका बालक सिद्धार्थ हूँ। आपकी प्रसन्नता के लिए मैं क्या करूँ? कहिए।

शुद्धोदन पुत्र, मैं यह सारा राज पाट तुम्हे सौंपना चाहता था, पर देखता हूँ, राज्य को तुम तुच्छ समझते हो।

बुद्ध हे पिता, आपका हृदय प्रेमपूर्ण है, पर आपका जितना मुझ पर प्रेम है, उतना ही यदि प्रजा के प्रत्येक व्यक्ति पर हो तो आपको सिद्धार्थ से बढकर पुत्र मिल सकते हैं। आप अपने मन से अब मेरे लिए पुत्र भाव निकाल डालिए। आप अपने समक्ष इस बुद्ध

को देखिए, जो सत्य का शिक्षक और सदाचार का प्रचारक है। इससे आपको निर्वाण प्राप्ति होगी।

शुद्धोदन (रोते हुए) आश्चर्यजनक परिवर्तन है! इससे मेरे हृदय को दुःख और व्याकुलता नहीं होती। पहले मैं शोकपूर्ण था, मानो मेरा हृदय फट जाएगा। अब मैं प्रसन्न हूँ। तुम संसार में अष्टांग मार्ग का प्रचार करो। परन्तु तुम जब भिक्षापात्र लेकर कपिलवस्तु की गलियों में जाते हो और एक ग्रास भिक्षा मांगते हो तो मेरा हृदय हाहाकार कर उठता है। एक दिन रत्न बखेरते हुए इन्हीं गलियों में रथ और हाथियों पर सवार होकर निकलते थे। ऐसा न करो पुत्र, तुम्हारे भोजन का प्रबन्ध तो मैं करूँगा।

बुद्ध पर यह हमारी धर्म-परिपाटी है पिता!

शुद्धोदन पुत्र, तुम उस राजकुल के हो, जिसने कभी भिक्षा नहीं मांगी।

बुद्ध मैं उस बुद्ध-वंश का हूँ जो सदा भिक्षा वृत्ति पर सन्तोष करता आया है। परन्तु आप आज्ञा कीजिए कि मैं आपकी प्रसन्नता के लिए क्या करूँ?

शुद्धोदन पुत्र, एक बार अन्तःपुर में चलकर वधू यशोधरा तथा सभी परिजन स्त्रियों के नेत्रों को अपने दर्शनों से तृप्त होने दो।

बुद्ध बहुत अच्छा पिता। ऐसा ही हो।

दृश्य सत्रह

[मधुर वीणा का वादन]

नेपथ्य में मलिन वस्त्र और धूलि धूसरित केशविहीना यशोधरा—मूर्तिमती वियोग और विषाद की छाया। चुपचाप अपने सप्तवर्षीय पुत्र को लिये खड़ी अपलक महावीतरागी प्रिय पति को धरती पर दृष्टि दिए कक्ष में आता देख रही है। वह इस बात को भूल गई कि उसका पति जगद्‌गुरु और सत्य का अन्वेषक है।

[घण्टी का धीमा धीमा शब्द]

बुद्ध वत्स सारिपुत्र, मैं तो मायापाश से मुक्त हुआ, पर यशोधरा अभी बद्ध है। उसे मैंने चिरकाल से नहीं देखा। वह वियोग से व्याकुल है। यदि मिलन-अभिलाषा अब भी पूर्ण न हुई तो उसका

हृदय फट जाएगा। इसलिए मैं तुम्हें सावधान किये देता हूँ कि यदि वह मुझे छूना चाहे, तो रोकना मत।

सारिपुत्र जैसी भगवान की आज्ञा!

[पद शब्द और धीरे धीरे सिसक सिसककर रोने का बढ़ता हुआ शब्द।]

शुद्धोदन पुत्र, यशोधरा को अपने चरणो म कुछ देर रहने दो। रोने से उसका हृदय हलका हो जाएगा। यह उसका रुदन हृदयस्थ प्रवृत्तप्रेम के स्रोत का प्रवाह है। जब उसे ज्ञात हुआ कि तुमने अपने केश काट डाले हैं तो उसने भी इसका अनुसरण किया। अब वह भूमि शयन करती और एकाहार करती है।

बुद्ध (करुण स्वर मे) हे कल्याणबुद्धे तुम धन्य हो! पुण्यात्मा हो। तुम्हारी पवित्रता और सुशीलता और भक्ति ने मुझे लाभ पहुँचाया। मैं सत्यज्ञान लाभ कर चुका हूँ। तुम्हारा शोक अवर्णनीय है। परन्तु तुमने जो आध्यात्मिक सम्पत्ति अपने श्रेष्ठ और शुद्धाचरण से प्राप्त की है, वह तुम्हारे समस्त दु खो को आनन्द मे परिवर्तित कर देगी।

यशोधरा हे प्रभु, पिता की सम्पत्ति पर पुत्र का अधिकार होता है। यह आपका पुत्र है। लीजिए, इसे अपनी धर्म सपदा से सम्यक् सपन्न कीजिए।

बुद्ध तुम्हारा मातृत्व धन्य है शुभे, तुम्हारे पुत्र को मै वह द्रव्य न दूगा जो नाशवान हो और उसे शोक और चिन्ता म डाले। यदि वह योग्य हुआ तो मैं उसे चारो सत्य का भेद समझाऊँगा।

बालक पिता, मैं योग्य बनूगा।

बुद्ध वत्स, तुम्हारा कल्याण हो, तुम मेरे साथ आओ!

यशोधरा जाओ, मेरे प्राणधन, मेरे नेत्रो की ज्योति, मेरी आत्मा के अवलम्ब, अपने महान् पिता के चरण चिह्नो के पीछे।

[जाने की पदचाप और सिसक सिसककर रोने की बहुत देर तक ध्वनि]

[पर्दा गिरता है।]

महाभारत की साँझ



भारत भूषण अग्रवाल

पात्र-परिचय

धृतराष्ट्र
सजय
भीम
युधिष्ठिर
दुर्योधन

[सारगी पर आलाप उठता है]

धृतराष्ट्र (ठण्डी साँस लेकर) कह नही सकता सजय ! किसके पापा का यह परिणाम है, किसकी भूल थी जिसका भीषण विषफल हमे मिला ! ओह ! क्या पुत्र-स्नेह अपराध है पाप है ? क्या मैंने कभी भी कभी भी

सजय शान्त हो महाराज ! जो हो चुका उसका शोक करना व्यर्थ है।

धृतराष्ट्र (सास लेकर) फिर क्या हुआ सजय ?

सजय आत्मरक्षा का और उपाय न देखकर महाबली सुयोधन द्वैतवन के सरोवर मे घुस गये, और उसके जल-स्तम्भ म छिपकर बैठे रहे। पर न जाने कैसे पाण्डवो को इसकी सूचना मिल गई और वे तत्काल रथ पर चढकर वहाँ पहुँच गए

[रथ की गडगडाहट]

भीम लीजिए महाराज ! यही है द्वैतवन का सरोवर। वे अहेरी कहते थे कि उन्होंने दुर्योधन को इसी जल में छिपते हुए देखा।

युधिष्ठिर आओ, हम लोग उसे बाहर निकालने की चेष्टा करें।

[जल की कल-कल ध्वनि]

(पुकारकर) ओ पापी ! अरे ओ कपटी, दुरात्मा दुर्योधन ! क्या स्त्रियों की भांति वहां जल में छुपा बैठा है ! बाहर निकल आ। देख, तेरा काल तुझे ललकार रहा है !

भीम कोई उत्तर नहीं। (जोर से) दुर्योधन ! दुर्योधन ! अरे, अपने सारे सहयोगियों की हत्या का कलंक अपने माथे पर लगाकर तू कायरों की भांति अपने प्राण बचाता फिरता है ! तुझे लज्जा नहीं आती ?

युधिष्ठिर लज्जा ! उस पापी को लज्जा ! भीमसेन ! ऐसी अनहोनी बात की तुमने कल्पना भी कैसे की ? जो अपने सगे-सम्बन्धियों को गाजर मूली की भांति कटवा सकता है, जो अपने भाइयों को जीवित जलवा देने में भी नहीं हिचकता, जो अपनी भाभी को भरी सभा में अपमानित कराने में आनन्द ले सकता है, उसका लज्जा से क्या परिचय ! (सव्यग्य हँसी)

दुर्योधन (दूर जल में से) हँस लो हँस लो दुष्टो ! जितना जी चाहे हँस लो, पर यह न भूलना कि मैं अभी जीवित हूँ, मेरी भुजाओं का बल अभी नष्ट नहीं हुआ है।

युधिष्ठिर (जोर से) अरे नीच ! अभी तेरा गर्व चूर नहीं हुआ ! यदि बल है तो फिर आ न बाहर और हमें पराजित करके राज्य प्राप्त कर। वहाँ बैठा-बैठा क्या वीरता बघारता है ! तू क्या समझता है हम तेरी थोथी बातों से डर जाएँगे ?

दुर्योधन अपने स्वार्थों के लिए अपने गुरुजनों बन्धु-बान्धवों का निर्ममता से वध करने वाले महात्मा पाण्डवों के रक्त की प्यास अभी बुझी नहीं है, यह मैं जानता हूँ। पर युधिष्ठिर ! सुयोधन कायर नहीं है, वह प्राण रहते तुम्हारी सत्ता स्वीकार नहीं कर सकता।

भीम तो फिर आ न बाहर और दिखा अपना पराक्रम ! जिस कालाग्नि को तूने वर्षों घृत देकर उभारा है उसकी लपटों में तेरे साथी तो स्वाहा हो गये। उसके घेरे से अब तू क्यों बचना चाहता है ? अच्छी तरह समझ ले, यह तेरी आहुति लिये बिना शान्त न होगी।

दुर्योधन जानता हूँ युधिष्ठिर ! भली भाँति जानता हूँ। किन्तु सोच लो, मैं थककर चूर हो गया हूँ ! मेरी सारी सेना तितर बितर हो गई है, मेरा कवच फट गया है, मेरे शस्त्रास्त्र चुक गये हैं। मुझे समय दो युधिष्ठिर, क्या भूल गये हो, मैंने तुम्हें तेरह वर्ष का समय दिया था ?

युधिष्ठिर (हँसकर) तेरह वर्ष का समय दिया था ? दुर्योधन ! तुमने तो हमें वनवास दिया था, यह सोचकर कि तेरह वर्ष वन में रहकर हमारा उत्साह ठण्डा पड़ जाएगा, हमारी शक्ति क्षीण हो जाएगी, हमारे सहायक बिखर जाएँगे, और तुम अनायास हम पर विजय पा सकोगे। इतनी आत्म प्रवंचना न करो।

दुर्योधन युधिष्ठिर ! तुम तो धर्मराज कहलाते हो। तुम्हारा दम्भ है कि तुम अधर्म नहीं करते। फिर तुम्हारे रहते तुम्हारी आँखों के आगे ऐसा अधर्म हो, सोचो तो !

भीम (हँसकर) अच्छा, तो अब तुझे धर्म का स्मरण हुआ। सच है कायर और पराजित ही अन्त में धर्म की शरण लेते हैं।

युधिष्ठिर अरे पामर ! तेरा धर्म तब कहाँ चला गया था जब एक निहत्थे बालक को सात सात महारथियों ने मिलकर मारा था जब आधा राज्य तो दूर, सुई की नोक के बराबर भी भूमि देना तुझे अनुचित लगा था। अपने अधर्म से इस पुण्य-लोक भारत भूमि में द्वेष की ज्वाला धधकाकर अब तू धर्म की दुहाई देता है। धिक्कार है तेरे मान को ! धिक्कार है तेरी वीरता का !

दुर्योधन एक निहत्थे, थके हुए व्यक्ति को घेरकर वीरता का उपदेश देना सहज है युधिष्ठिर ! मुझे खेद है, मैं उसके लिए तुम्हारी प्रशंसा नहीं कर सकता पर मैं सच कहता हूँ तुमसे, इस नर हत्या काण्ड से मुझे विरक्ति हो गई है। इस रक्त रंजित सिंहासन पर बैठकर राज करने की मेरी कोई इच्छा नहीं है। तुम निश्चित मन से जाओ और राज्य भोगो। सुयोधन तो वन में जाकर भगवत् भक्ति में दिन बिताएगा।

भीम व्यर्थ है दुर्योधन ! तेरी यह सारी कूटनीति व्यर्थ है। अपने पापों के परिणाम से अब तू किसी भी प्रकार नहीं बच सकता। बाहर निकलकर युद्ध कर, बस यही एक मार्ग है।

दुर्योधन अप्रस्तुत को मारने में यदि तुम्हें सन्तोष मिलता हो तो लो मैं बाहर आता हूँ। (जल से बाहर निकलकर पास आने तक की

आवाज) पर मैं पूछता हूँ युधिष्ठिर ! मेरे प्राणो का नाश कर तुम्ह क्या मिल जाएगा ?

युधिष्ठिर अरे पापी ! यदि प्राणो का इतना ही मोह था तो फिर यह महाभारत क्यो मचाया ! न्याय को ठोकर मारकर अन्याय का पथ क्या ग्रहण किया ?

दुर्योधन युधिष्ठिर ! मैंने जो कुछ किया अपनी रक्षा के लिए ! मैं जीना चाहता था, शान्ति और मेल से रहना चाहता था। मैं नही चाहता था कि तुम्हारे रहते मेरी यह कामना, यह सामान्य सी इच्छा ही पूरी न हो सकेगी।

भीम पाखण्डी ! तुझे झूठ बोलते लज्जा नही आती।

दुर्योधन ले लो राक्षस ! यदि तुम्हारी हिंसा इसी से तृप्त होती हो तो ले लो, मेरे प्राण भी ले लो। जब मैं जीवन भर प्रयास करके भी अपनी एक भी घडी शान्ति से न बिता सका, जब मैं अपनी एक भी कामना को फलते न देख सका, तो अब इन प्राणो को रखकर भी क्या करूँगा। लो, उठाओ शस्त्र और उडा दो मेरा शीश। अब देखते क्या हो ? मैं निहत्था तुम्हारे सम्मुख खडा हूँ। ऐसा सुअवसर कब मिलेगा, मेरे जीवन शत्रुओ !

युधिष्ठिर पहले वीरता का दम्भ और अन्त मे करुणा की भीख !—कायरो का यही नियम है। परन्तु दुर्योधन ! कान खोलकर सुन लो। हम तुम्हें दया करके छोडेंगे भी नही, और तुम्हारी भाँति अधम से हत्या कर वधिक भी न कहलायेंगे। हम तुम्ह कवच और अस्त्र देंगे ? तुम जिस अस्त्र से लडना चाहो, बता दो। हममे से केवल एक व्यक्ति ही तुमसे लडेगा। और यदि तुम जीत गये तो सारा राज्य तुम्हारा ! कहो, यह तो अधम नही है ?—स्वीकार है ?

भीम इस दुराचारी के साथ ऐसा व्यवहार बिलकुल अनावश्यक है।

दुर्योधन मैं तो कह चुका हूँ युधिष्ठिर ! मुझे विरक्ति हो गई है। मेरी समझ म आ गया है कि अब प्राणो की तृप्ति की चेष्टा व्यर्थ है। विफलता के इस मरुस्थल मे अब एक बूँद आएगी भी तो सूखकर खो जाएगी। यदि तुम्ह इसी मे सन्तोष हो कि तुम्हारी महत्त्वाकांक्षा मेरी मृत देह पर ही अपना जय स्तम्भ उठाए तो फिर यही सही। (साँस लेकर) चलो यह भी एक प्रकार से अच्छा ही होगा। जिन्होने मेरे लिए अपने प्राणो की बलि दी, उन्ह मुह

तो दिखा सकूगा। (रुककर) अच्छी बात है युधिष्ठिर! मुझे एक गदा दे दो, फिर देखो मेरा पौरुष!

संजय — इस प्रकार महाराज! पाण्डवो ने विरक्त सुयोधन को युद्ध के लिए विवश किया। पाण्डवो की ओर से भीम गदा लेकर रण मे उतरे। दोनो वीरो मे घमासान युद्ध होने लगा। सुयोधन का पराक्रम सबको चकित कर देता था, ऐसा लगता था मानो विजय श्री अन्त मे उन्ही का वरण करेगी। पर तभी श्रीकृष्ण के सकेत पर भीम ने सुयोधन की जघा मे गदा का भीषण प्रहार किया। कुरुराज आहत होकर चीत्कार करते हुए गिर पडे।

धृतराष्ट्र — हा पुत्र! इन हत्यारो ने अधर्म से तुम्हे परास्त किया। सजय! मेरे इतने उत्कट स्नेह का ऐसा अन्त! आह! मैं नही सह सकता! मैं नही सह सकता!

संजय — धैर्य, महाराज, धैर्य! कुरुकुल के इस डगमगाते पोत के अब आप ही कर्णधार है।

धृतराष्ट्र — सजय! बहलाने की चेष्टा न करो। (रुककर) पर ठीक कहा तुमने! कुरुकुल का कर्णधार ही अन्धा है, उसे दिखाई नही देता!

संजय — महाराज! ठीक यही बात सुयोधन ने कही थी।

धृतराष्ट्र — क्या? क्या कहा था सुयोधन ने ? कब ?

संजय — जब सुयोधन आहत होकर निस्सहाय भूमि पर गिर पडे तो पाण्डव जयध्वनि करते और हर्ष मनाते अपने शिविर को लौट गए। सन्ध्या होने पर पहले अश्वत्थामा आए और कुरुराज की यह दशा देखकर बदला लेने का प्रण करके चले गये। फिर युधिष्ठिर आए। सुयोधन के पास आकर वह झुके, और शान्त स्वर मे बोले—

[दुर्योधन की कराह जो बीच बीच मे निरन्तर चलती रहती है]

युधिष्ठिर — दुर्योधन! दुर्योधन!! आखें खोलो भाई!

दुर्योधन — *(कराहते हुए) कौन? कौन? युधिष्ठिर! युधिष्ठिर! तुम क्यो* आए हो? अब क्या चाहते हो? तुम राज्य चाहते थे वह मैंने दे दिया मेरे प्राण चाहते थे वे भी मैंने दे दिये। अब क्या लेने आए हो मेरे पास! अब मेरे पास ऐसा कौन-सा धन है जिसके प्रति तुम्हे ईर्ष्या है! जाओ! जाओ दूर हो मेरी आखो से! जीवन मे तुमने मुझे चैन नही लेने दिया, अब कम से-कम मुझे शान्ति से मर तो लेने दो युधिष्ठिर! जाओ! चले जाओ!!

युधिष्ठिर तुमने भूल समझा दुर्योधन ! मैं कुछ लेने नही आया ! मैं तो देखने आया था कि

दुर्योधन कि अंतिम समय म मैं किस तरह निस्सहाय निबल पशु की भाति तडप तडपकर अपना दम तोडता हूँ ? मेरे मृत्यु का पव मनाने आए हो न ? मेरी आहो का आलाप सुनने आए हो न ? अरे निदयी ! तुम्हे किसने धमराज की सज्ञा दी ? जो सुख से मरने भी नही देता वही धम का ढोल पीटे, कैसा अन्याय है !

युधिष्ठिर अथ का अनथ न करो दुर्योधन ! मैं तो तुम्हे शांति देने आया था। मैंने सोचा, हो सकता है तुम्हे पश्चात्ताप हो रहा हो ! यदि ऐसा हो, तो तुम्हारी व्यथा हल्की कर सकू इसी उद्देश्य से मैं आया था।

दुर्योधन हाय रे मिथ्याभिमानी ! अभी यह दया का ढाग नही छोडा ! पर युधिष्ठिर ! तनिक अपनी ओर तो देखो ! पश्चात्ताप तो तुम्हे होना चाहिए था ! मैं क्या पश्चात्ताप करूँगा ! मैंने ऐसा कौन सा पाप किया है ? मैंने अपने मन के भावो को गुप्त नही रखा मने षडयन्त्र नही किया, मैंने गुरुजनो का वध नही किया।

युधिष्ठिर यह तुम क्या कह रहे हो दुर्योधन ?

दुर्योधन (किटकिटाकर) दुर्योधन नही, सुयोधन कहो धमराज ! सुयोधन। क्या अब भी तुम्हारी छाती ठण्डी नही हुई ? क्या मुझे मारकर भी तुम्हे सतोष नही हुआ जो मेरी अंतिम घडी मे मेरे मुह पर मेरे नाम की खिल्ली उडा रहे हो ! निदयी ! क्या ईर्ष्या मे अपनी मानवता भी भस्म कर दी ?

युधिष्ठिर क्षमा करो भाई। अब तुम्हे और अधिक कष्ट नही पहुँचाना चाहता। पर मेरे कहने या न कहने से क्या, आने वाली पीढियाँ तुम्हे दुर्योधन के नाम से ही सम्बोधित करेंगी, तुम्हारे कृत्यो की साक्षी इतिहास पुकार पुकारकर ।

दुर्योधन मुझे दुर्योधन कहेगा ! यही न ! जानता हूँ युधिष्ठिर ! मैं जानता हूँ। मुझे मारकर ही तुम चुप नही बैठोगे। तुम विजेता हो अपने गुरुजनो और सगे-सम्बंधियो के शोणित की गगा मे नहाकर तुमने राजमुकुट धारण किया है। तुम अपनी देख रेख मे इतिहास लिखवाओगे और उसका पूरा पूरा लाभ उठाने से क्या चूकोगे ? सुयोधन को सदा के लिए दुर्योधन बनाकर छोडोगे। (कराहकर) उसकी देह ही नही उसका नाम तक मिटा दोगे। यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। (रुककर) मेरे मरने पर तुम जो चाहो करना,

मैं तुम्हारा हाथ पकड़ने नहीं आऊँगा। पर इस समय जब तुम्हारा सबसे बड़ा शत्रु मर रहा है, उसे इतना न्याय तो दो कि उसका मिथ्या अपमान न करो।

युधिष्ठिर युधिष्ठिर ने सदा न्याय ही किया है सुयोधन! न्याय के लिए वह बड़े बड़े दुःख उठाने से भी नहीं चूका है। सगे-सम्बन्धियों के तड़प-तड़पकर प्राण त्यागने का यह भीषण दृश्य! अबलाओं, अनाथों का यह करुण चीत्कार किसी भी हृदय को दहलाने के लिए पर्याप्त था। पर सुयोधन! मैं इस संहार के दृश्यों को भी शान्त भाव से सह गया, क्योंकि न्याय के पथ पर जो भी मिले, सब स्वीकार है।

दुर्योधन यह दम्भ है युधिष्ठिर! यह मिथ्या अहंकार है। मैं तुम्हारी यह आत्मप्रशंसा नहीं सुन सकता, इसे तुम अपने भक्तों के ही लिए रहने दो। तुम विजय की डींग मार सकते हो, पर न्याय धर्म की दुहाई तुम मत दो। स्वार्थ को न्याय का रूप देकर धर्मराज की उपाधि धारण करने में तुम्हें सन्तोष मिलता है तो मिले, मेरे लिए वह आत्म प्रवंचना है, मैं उससे घृणा करता हूँ।

युधिष्ठिर स्वार्थ! सुयोधन, स्वार्थ?

दुर्योधन और नहीं तो क्या! जिस राज्य पर तुम्हारा रत्ती भर भी अधिकार नहीं था उसी को पाने के लिए तुमने युद्ध ठाना, यह स्वार्थ का ताण्डव नृत्य नहीं तो और क्या है? भला किस न्याय से तुम राज्याधिकार की माँग करते थे?

युधिष्ठिर सुयोधन! मन को टटोलकर देखो। क्या वह तुम्हारे कथन का समर्थक है? क्या तुम नहीं जानते कि पिता के राज्य पर पुत्र का अधिकार सर्वसम्मत है? फिर महाराज पाण्डु का राज्य मेरा हुआ या नहीं?

दुर्योधन बस, तुम्हारे पास एक यहाँ तक है न! परन्तु युधिष्ठिर! क्या तुमने कभी भी यह सोचा कि जिस राज्य पर तुम अधिकार चाहते थे वह तुम्हारे पिता के पास कैसे आया? क्या जन्माधिकार से? नहीं। तुम्हारे पिता को राज्य की देखभाल का कार्य केवल इसलिए मिला कि मेरे पिता अन्धे थे। राज्य संचालन में उन्हें असुविधा होती। अन्यथा उस पर तुम्हारे पिता का कोई अधिकार न था, वह मेरे पिता का था।

युधिष्ठिर यह तो ठीक है। पर एक बार, चाहे किसी भी कारण से हो, जब मेरे पिता को राज्य मिल गया, तब उनके पश्चात उस पर मेरा

अधिकार हुआ या नही ? क्या राज नियम यह नही कहता ?

दुर्योधन राज नियम की चिता कब की तुमने ! अयथा इस बात के समथन म क्या कठिनाई थी कि तुम्हारे पिता के उपरात राज्य पर मूल अधिकार मेरे पिता का ही था। वह जिसे चाहते, व्यवस्था के लिए उसे सौंप सकते थे।

युधिष्ठिर यह केवल तुम्हारा निजी मत है। आज तक किसी ने भी इस प्रकार का कोई सदेह प्रकट नही किया। पितामह भीष्म, महात्मा विदुर, कृपाचाय अथवा स्वय महाराज धृतराष्ट्र न भी कभी ऐसी कोई बात नही कही।

दुर्योधन यही तो मुझ दुख है युधिष्ठिर ! कि तथ्य तक पहुँचने की किसी न भी चेष्टा नही की। एक अयाय की प्रतिष्ठा के लिए इतना श्रम किया गया और सब अधा की भाँति उसे स्वीकार करते गए। सबन मेरा हठ ही देखा, मेरे पक्ष का याय किसी ने न देखा और जानते हो, इसका क्या कारण था ?

युधिष्ठिर क्या ?

दुर्योधन सब तुम्हारे गुणा से प्रभावित थे, सब तुम्हारी वीरता से डरते थे। कायरा की भाँति, रक्तपात से बचने के प्रयत्न म व याय और सत्य का बलिदान कर बैठे। वे यह नही समझ पाए कि भय जिसका आधार हो, वह शाति स्थायी नही हो सकती।

युधिष्ठिर गुरजना पर तुम व्यथ ही कायरता का आरोप कर रहे हो। यदि मेरे पक्ष म याय न होता तो कोइ भी मुझको राज्य देने की माँग क्यो करता ?

दुर्योधन तभी तो कहता हूँ युधिष्ठिर ! कि स्वाथ ने तुम्ह अधा बना दिया। अयथा इतनी छोटी सी बात क्या तुम्ह दिखाई न पड जाती कि जितने धार्मिक और यायी व्यक्ति थ, सबने इस युद्ध म मेरा साथ दिया है। यदि याय तुम्हारी ओर था तो फिर भीष्म द्रोण, कृप अश्वत्थामा— सब मेरी ओर से क्यो लडे ? क्या वे जान बूझकर अयाय का साथ दे रहे थे ? यहा तक कि कृष्ण जसे तुम्हारे परम मित्र न भी मेरी सहायता के लिए अपनी सेना दी। वह चतुर थे, दोना से मत्री रखना ही उहोन अच्छा समझा। ऐसा क्या हुआ ? बोलो इसीलिए न, कि याय वास्तव म मेरी ओर था ?

युधिष्ठिर सुयोधन ! मैं तुम्ह सात्वना देने आया था विवाद करने नही।

मैं तो तुम्हारी पीड़ा बँटा लेने आया था। क्योंकि तुम चाहे कुछ समझो, मेरी इस बात का तुम विश्वास करो कि मैं इस रक्तपात के लिए तैयार न था, मेरी इच्छा यह कदापि नहीं थी।

दुर्योधन मैं इसका कैसे विश्वास करूँ? क्या तुम्हारे कह देने से ही? पर तुम्हारे वचनों से भी सशक्त स्वर है तुम्हारे कार्यों का, जीवन की गतिविधि का, और वह पुकार पुकारकर कह रही है कि युधिष्ठिर शोणित तर्पण चाहता था, युधिष्ठिर रक्त की होली खेलने के लिए ही सारे अवसर जुटा रहा था। भविष्य को भी तुम चाहो तो बहका सकते हो युधिष्ठिर! पर सुयोधन को नहीं बहका सकते। क्योंकि उसने अपने बचपन से लेकर अब तक की एक एक घड़ी तुम्हारी ईर्ष्या के रथ की गड़गड़ाहट सुनते हुए बिताई है, तुम्हारी तैयारियों ने उसे एक रात भी चैन से नहीं सोने दिया।

युधिष्ठिर सुयोधन! मुझे लगता है, तुम सुध बुध खो बैठे हो, तुम प्रलाप कर रहे हो। भला ज्ञान में कभी कोई ऐसी असम्भाव्य बातें कहता है? जो पाण्डव तुमसे तिरस्कृत होकर घर घर भीख मांगते फिरे, वन जंगलों की धूल छानते फिरे, उनके सम्बन्ध में भला कौन ज्ञानी व्यक्ति तुम्हारे इस कथन का विश्वास करेगा?

दुर्योधन मैं जानता हूँ युधिष्ठिर! कोई विश्वास नहीं करेगा। और करेगा भी, चाहे तो तुम उसे विश्वास न करने दोगे। पर इससे क्या? सत्य को दबाकर उसे मिथ्या नहीं किया जा सकता। बचपन से, जब हम लोगों ने एक साथ शिक्षा पाई, तब से आज तक के सारे चित्र मेरी दृष्टि में रहे हैं। पुरोचन को कपट से मारकर तुम पांचाल गए, और वहां द्रुपद को अपनी ओर मिलाया। तभी तो तुम्हारा बल बढ़ता देखकर पिताजी ने तुम्हें आधा राज्य दिया।

युधिष्ठिर मैं तो यह जानता हूँ कि आधे राज्य पर मेरा अधिकार था।

दुर्योधन सत्य को ढँकने का प्रयत्न न करो युधिष्ठिर! उसे निष्पक्ष होकर जाँचो। मेरे पास प्रमाणों की कमी नहीं है। आधा राज्य पाकर भी तुमने चैन न लिया। तुमने अर्जुन को चारों ओर दिग्विजय के लिए भेजा। राजसूय यज्ञ के बहाने तुमने जरासंध और शिशुपाल को समाप्त किया। यहां तक कि जुए में, खेल-खेल में भी तुम अपनी ईर्ष्या नहीं भूले, और तुमने झट से अपना राज्य दाँव पर लगा दिया कि यदि तुम जीते तो तुम्हें मेरा राज्य अनायास ही

मिल जाए। वनवास उसी महत्वाकांक्षा का परिणाम था, मेरा उसमें कोई हाथ न था।

युधिष्ठिर तुमने जिस तरह भरी सभा में द्रौपदी का अपमान किया

दुर्योधन मेरा अपमान भी द्रौपदी ने भरी सभा में ही किया था। तब तुम्हारी यह न्याय भावना क्या सो रही थी? फिर द्रौपदी को दाँव पर लगाकर क्या तुमने उसका सम्मान करने की चेष्टा की थी? जिस समय द्रौपदी सभा में आई, उस समय वह द्रौपदी नहीं थी, वह जुए में जीती हुई दासी थी।

युधिष्ठिर यह तुम कैसी विचित्र बात कर रहे हो?

दुर्योधन सत्य को विचित्र मानकर उड़ा नहीं सकते युधिष्ठिर! अपने ही कृत्य से वनवास पाकर भी उसका दोष मेरे ही माथे मढ़ा गया, और फिर उस वनवास का एक एक क्षण युद्ध की तैयारी में लगाया गया। अर्जुन ने तपस्या द्वारा नये नये शस्त्र प्राप्त किए। विराट राज से मैत्री कर नये सम्बन्ध बनाये गए, और अवधि पूर्ण होते ही अभिमन्यु के विवाह के बहाने मित्र राजाओं को निमन्त्रण देकर एकत्रित किया गया। युधिष्ठिर! क्या इस कटु सत्य को तुम मिटा सकते हो?

युधिष्ठिर यदि जो कुछ तुम कह रहे हो वह सत्य है तो सुयोधन! तुम मेरा विश्वास करो कि तुमने प्रत्येक घटना के उलटे अर्थ लगाए हैं। जो नहीं है, उसे तुमने कल्पना के आरोप द्वारा देखा है। यह सब मिथ्या है।

दुर्योधन किन्तु यही बात मैं तुम्हारे लिए कह सकता हूँ! क्योंकि अन्तर्यामी जानते हैं कि मैंने कोई बुरा आचरण नहीं करना चाहा। मैंने केवल अपनी रक्षा की। जब तक तुमने आक्रमण नहीं किया, मैं चुप रहा, जब मैंने देखा कि युद्ध अनिवार्य है तो फिर मुझे विवश होकर वीरोचित कर्तव्य करना पड़ा।

युधिष्ठिर अभिमन्यु वध भी क्या वीरोचित था?

दुर्योधन एक एक बात पर कहाँ तक विचार करोगे युधिष्ठिर! जब भीष्म, द्रोण और कर्ण का वध वीरोचित हो सकता है, तो अभिमन्यु वध में ही ऐसी क्या विशेषता थी? और आज भी भीमसेन ने मुझे जिस प्रकार पराजित किया है वही क्या वीरोचित कहलाएगा? पर युधिष्ठिर! मेरे पास अब इतना समय नहीं है कि इन सबकी विवेचना करूँ। मैं तो सबकी सार बात जानता हूँ कि तुम्हारी महत्वाकांक्षा ही इस नर-संहार का,

इस भीषण रक्तपात का मूल कारण है। मैं तो एक निस्सहाय, विवश व्यक्ति की भाति केवल जूझ भरा हूँ। तुम्हारे चक्र त म मेरे लिए यही पुरस्कार निर्धारित किया गया था।

युधिष्ठिर सुयाधन ! तुम्हे भ्राति हो गई है, तुम सत्य और मिथ्या का भेद करन मे असमथ हो। तुम्हार मस्तिष्क की यह दशा सचमुच दयनीय है।

दुर्योधन बड निष्ठुर हो युधिष्ठिर ! मरणोमुख भाई से दुराव करते तुम्हारा हृदय नही पसीजता ! कुछ क्षणो म ही मैं इस लोक के परे पहुँच जाऊँगा। मेरे सम्मुख यदि तुम सत्य स्वीकार कर भी लोगे तो तुम्हारे राजत्व को कोई हानि न पहुँचेगी (कराहता है) पर नहो, मैं भूल गया। तुम तो अपने शत्रु की इस विकल मत्यु पर प्रसन्न हो रहे होग। आज वह हुआ जो तुम चाहते थे, और जो मैं नहीं चाहता था। मैंन अपन सम्पूण जीवन का एक एक पल तुम्हारी महत्वाकाक्षा की टकराहट से बचने म लगाया। परन्तु मेरे सारे प्रयत्न निष्फल हुए। वह देखा, वह अँधेरा बढा आ रहा है। साझ हा रही है। मेरे जीवन की अतिम साँझ। (पष्ठभूमि मे सारगी पर करुण आलाप, जो चलता जाता है) और उधर मेघ घिरे आ रहे है द्रौपदी के विखरे केशो की भाति ! व मुझे निगल लेंगे ! युधिष्ठिर ! जाओ, जाओ मुझे मरन दो ! तुम अपनी महत्वाकाक्षा का फलते फूलते दखो ! जाआ, गुरजनो और बन्धु-बान्धवा के रक्त स अभिपेक कर राज्य सिहासन पर विराजो ! मैं तुम्हारे चरणो से रौंद हुए काँटे की भाति तुम्हार माग स हटे जाता हूँ।

युधिष्ठिर इतने उत्तेजित न हो सुयोधन। वीरो की भाँति धय रखो ! शात हो जाओ।

दुर्योधन घबराओ नही युधिष्ठिर ! मेरी शान्ति के लिए तुम जो उपाय कर चुके हा, वह अचूक है। दो क्षण और, फिर मैं सदा को शात हो जाऊँगा ! पर अतिम सास निकलने स पहले युधिष्ठिर ! एक बात कह जाता हूँ। तुम पश्चात्ताप की बात पूछने आए थे न ? मेरे मन म कोई पश्चात्ताप नही है। मैंने कोई भूल नही की। मैंन भय से तुम्हारी शरण नहीं माँगी ! अन्त तक तुमसे टक्कर ली, और अब वीरगति पाकर स्वग जाता हूँ। समझे युधिष्ठिर ! मुझे ग्लानि नही है, कोई पश्चात्ताप नही है। केवल एक केवल एक दु ख मेरे साथ जाएगा।

युधिष्ठिर क्या ?

दुर्योधन यही—यही कि मेरे पिता अन्धे क्या हुए। नही तो, नही तो महाभारत न होता।

[करुण आलाप उठकर धीरे धीरे लुप्त हो जाता है।]

[पर्दा गिरता है।]

नरमेध



भरतप्रसाद गुप्त

(नेपथ्य से)

महर्षि विश्वामित्र के सम्बन्ध में दो कथाएँ बहुत प्रचलित हैं। एक कथा उनके तप भंग की है, जिससे महाकवि कालिदास के महान काव्यनाटक अभिज्ञान शाकुन्तलम की अमर नायिका शकुन्तला का जन्म हुआ था। दूसरी कथा उनके द्वारा ली गई राजा हरिश्चन्द्र की परीक्षा की है जिससे राजा हरिश्चन्द्र की प्रसिद्धि सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र के रूप में हुई और जिस पर अमर नाटक 'सत्य हरिश्चन्द्र' की रचना भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने की।

महर्षि विश्वामित्र ऋग्वेद के कितने ही मन्त्रों के द्रष्टा अथवा स्रष्टा हैं। पुराणों में भी उनकी कितनी ही कथाएँ बिखरी हुई हैं। वे एक दुर्द्धर्ष महर्षि के रूप में हमारे सामने आते हैं, जिनके तेज के समक्ष अन्य ऋषि मुनि छायाग्रस्त से हो जाते हैं।

ऐतरेय ब्राह्मण मे एक नरमेध का उल्लेख है। इस नरमेध के संदर्भ मे महर्षि विश्वामित्र के जिस दृढ़ चरित्र, महान त्याग, निर्भयता तथा सत्य सिद्धान्तनिष्ठा के दर्शन होते है अद्भुत हैं। प्रस्तुत नाटक का आधार वही नरमेध कथा है। नाटक रचना तथा वर्तमान स्थिति की मांग के दबाव मे मैंने जो थोड़ी स्वतन्त्रता ली है उसे मेरे जीवनदर्शन, आदर्श तथा सर्जन का हस्तक्षेप समझा जाए।

भरतप्रसाद गुप्त

पात्र परिचय

पुरुष पात्र

महर्षि विश्वामित्र पैंतालीस वर्ष
जमदग्नि विश्वामित्र का भानजा—तीस वर्ष
वरुण देव प्रौढ़ वय
हरिश्चन्द्र पैंतालीस वर्ष
रोहित हरिश्चन्द्र का पुत्र—अठारह वर्ष
अजीगर्त अंगिरा चालीस वर्ष
शुन शेप बीस वर्ष—अजीगर्त का पुत्र
दूत पच्चीस वर्ष
एक स्वर

नारी पात्र

रोहिणी विश्वामित्र की पत्नी—चालीस वर्ष
वेश भूषा पौराणिक
काल वैदिक युग

[नेपथ्य से कुछ देर तक मेघगर्जन, गड़गड़ाहट की तेज आवाजें होती हैं। पर्दा उठता है तो बिजली चमकने का प्रकाश मंच पर पड़ता है। सिंहासन पर हरिश्चन्द्र चिंतित बैठे हैं।]

वरुण (पुकारता आता है) हरिश्चन्द्र! हरिश्चन्द्र!

हरिश्चन्द्र (चौंककर) कौन? कौन है?

वरुण इधर देखो, हरिश्चन्द्र! क्या तुमने मुझे मेरे स्वर से नहीं पहचाना? तुमने तो मेरी आराधना की थी

हरिश्चन्द्र (सकपकाकर) ओह वरुण देव! मेरा प्रणाम स्वीकार करें, देव!

वरुण मैं तुम्हारा प्रणाम लेने नहीं आया हूँ। इतने वर्षों प्रतीक्षा करने के पश्चात मैं तुम्हें स्मरण दिलाने आया हूँ। कुछ स्मरण है तुम्हें?

हरिश्चन्द्र है देव। मुझे सब स्मरण है।

वरुण मुझे तो नही लगता कि तुम्हे कुछ भी स्मरण है। अन्यथा तुम इतने वर्षों तक मुझसे प्रतीक्षा न करवाते। उन दिनो तो तुम प्रतिदिन मेरी आराधना करते थे, मेरी पूजा करते थे तथा मुझसे प्रार्थना करते थे कि हे वरुण देव ! मुझ पर कृपा कीजिए। मेरी प्रार्थना सुनिए। मुझे केवल एक पुत्र प्रदान कीजिए। केवल एक पुत्र।

हरिश्चन्द्र मुझे सब स्मरण है, देव, सब ! मैं वह सब विस्मृत करने की धृष्टता कैसे कर सकता हूँ ? क्या आपको ज्ञात नही है कि मैं अब भी नित्य प्रति प्रात आपकी आराधना करता हूँ, पूजा करता हूँ तथा प्रार्थना करता हूँ ?

वरुण (क्षुब्ध) मुझे तुम्हारी आराधना-पूजा प्रार्थना नही चाहिए। मुझे जो चाहिए, तुम उसकी बात करो ! वह तो तुम विस्मृत कर चुके हो न ?

हरिश्चन्द्र नही-नही, देव ! मुझे सब स्मरण है, देव, सब ! आपको जो चाहिए उसी के निमित्त तो मैं प्रतिदिन प्रार्थना करता हूँ कि आप

वरुण नही नही। अब मैं तुम्हारी कोई प्रार्थना नही सुनूगा। पहले तुम अपना वचन पूरा करो। तुमने मुझे एक वचन दिया था, तुम्हे स्मरण है ?

हरिश्चन्द्र है महाराज, है

वरुण क्या है ? स्पष्ट शब्दो मे बोलो।

हरिश्चन्द्र मैंने आपके आदेशानुसार आपको वचन दिया था कि यदि आपने मुझे एक पुत्र प्रदान करने की कृपा की, तो मैं बाझपन के अभिशाप से मुक्त होकर उस पुत्र की बलि आपको दे दूगा !

वरुण मुझे प्रसन्नता है कि तुम्हे अपना वचन स्मरण है। किन्तु तुमने अभी तक अपना वचन पूरा क्यो नही किया ? पुत्र का जन्म हुए तो वर्षों हो गए।

हरिश्चन्द्र हाँ देव, अठारह वर्ष हो गये इस बीच मैंने कितनी ही बार अपना वचन पूरा करने का सकल्प किया किन्तु

वरुण किन्तु पुत्र के मोहवश तुम अपने कर्तव्य का पालन न कर सके। यही न ?

हरिश्चन्द्र आपसे क्या छिपा है देव !

वरुण क्या तुम्हे यह ज्ञात न था कि ज्यो-ज्यो पुत्र बडा होता जाएगा, उसका मोहबन्ध अधिक अटूट होता जाएगा ?

हरिश्चन्द्र पहले जब मैंने आपको वचन दिया था, मुझे ज्ञात न था, देव कि पुत्रप्रेम क्या होता है। किन्तु जब मैं पुत्रवान हो गया

वरुण हूँ। तो अब तुम अपना वचन पूरा करना नहीं चाहते

हरिश्चन्द्र नहीं-नहीं, देव। यह कैसे हो सकता है कि मैं वचन पूरा न करूँ आपका कोपभाजन बनूँ और अपना सर्वनाश देखूँ? किन्तु इस समय तो मैं विवश हूँ।

वरुण क्या तुम विवश क्या हो?

हरिश्चन्द्र क्या आपको ज्ञात नहीं कि मेरे पुत्र रोहित का पिछले छ वर्षों से कोई पता नहीं है। उसे जब यह ज्ञात हुआ था कि मैं आपको उसकी बलि देने के लिए वचनबद्ध हूँ तो वह भयातुर होकर भाग गया था।

वरुण हूँ! यह तो तुम्हें एक बहुत अच्छा बहाना मिल गया

हरिश्चन्द्र नहीं-नहीं देव! मैं तो स्वयं उसके लिए व्याकुल रहता हूँ। मैंने कहाँ कहाँ न ढुंढवाया उसे। लेकिन उसका कहीं भी पता न चला। आपने उसे कहीं देखा है, देव? वह अतिसुन्दर, सुशील तथा निरीह बालक है। जाने कहाँ भटक रहा होगा? जाने क्या खाता पीता होगा? सोचकर मेरा हृदय विदीर्ण हो जाता है। छ वर्ष हो गए देव। (सिसकता है)।

वरुण वाह! क्या कथा सुनाई है तुमने। क्या तुम सोचते हो कि तुम्हारी यह कथा सुनकर मैं अपनी बलि लिये बिना तुम्हें छोड़ दूँगा?

हरिश्चन्द्र नहीं नहीं, महाराज! वह तो मुझे देनी ही है, रोहित मेरे पास आ तो जाए, उसके पश्चात

वरुण उसके पश्चात तुम क्या करोगे, वह भी मैं देखूँगा। किन्तु उसके पूर्व तुम्हें अपने कर्त्तव्यपालन में विलम्ब करने का दण्ड भोगना पड़ेगा। अब तक तुम्हारा हृदय विदीर्ण होता रहा है और अब तुम्हारा शरीर भी

हरिश्चन्द्र (रुदन करता है) देव! देव! ऐसा शाप मत दीजिए!

वरुण मुझे बलि की प्रतीक्षा करते हुए अठारह वर्ष हो गए। [illegible] समय तक तुम्हें क्षमा नहीं किया जा सकता। [illegible] किन्तु तुम्हारे हृदय की व्यथा का नहीं [illegible] अदृश्य व्यथा है। तुम्हारे शरीर [illegible] समझेगा और भागा भागा [illegible] के पश्चात मैं देखूँगा कि [illegible]

एक बार पुन मैं तुम्हे सावधान करता हूँ कि यह बात तुम भूल कर भी अपने मन म न लाना कि मैं किसी भी दशा म अपनी बलि त्याग सकता हूँ।

[जाता है। खडाऊँ की आवाज धीरे धीरे नपथ्य मे तिरो हित होती है। मच का प्रकाश बुझता है, फिर प्रकाश होता है तो शय्या पर हरिश्चद्र रोगग्रस्त पडा है। उसके पायताने रोहित खडा है]

रोहित (रोता हुआ) पिता जी! पिता जी! यह आपकी क्या दशा हो गई?

हरिश्चद्र तुम क्यो आ गय, पुत्र? तुम चले जाओ, अभी चले जाओ, पुत्र!

रोहित नही, पिता जी। अब मैं आपको छोडकर कही नही जाऊँगा। मेरे ही कारण आपकी यह दशा हुई है न!

हरिश्चद्र नही, पुत्र! तुम अभी चले जाओ। तुम जहा भी रहो, जीवित तो रहोगे। मैं जीते जी अपने हाथो से तुम्हारी बलि नही दे सकता, नही दे सकता। वरुण देव मेरे प्राण ले लें तो भी मैं तुम्हारी बलि नही दे सकता। पुन तुम चले जाओ, तुम्हारा यहाँ एक क्षण भी रुकना ठीक नही। हो सकता है कि वरुण देव अभी आ जाएँ

रोहित आने दीजिये पिताजी, उन्हे आन दीजिए। मैं स्वय उन्हे अपनी बलि द दूगा। मैं आपके प्राण सकट मे डालकर जीवित रहना नही चाहता। रह भी नही सकता, पिता जी। अपने प्राण जाने के भय से जब मैं भागा था, मैं एक बालक था। किन्तु अब मैं बालक नही हूँ। वना मे ऋषि मुनियो के आश्रम मे भटककर मुझे ज्ञान प्राप्त हो गया है। यह जीवन नश्वर है। इसकी रक्षा के निमित्त किसी के प्राणा को सकट म डालना महा अपराध है, महापाप है। आप तो मेरे पिता हैं—जनक हैं, जान-बूझकर अपने तुच्छ जीवन के लिए मैं आपका जीवन सकट म नही डाल सकता। जैसे ही मुझे समाचार मिला कि वरुण देव न आपको शाप दिया है कि जब तक आप मेरी बलि उन्हे नही दे देंगे आपका शरीर कष्ट मे पडा रहेगा मैं भागा भागा आपके पास आया हूँ। अब आप मेरी बलि देकर शापमुक्त होकर सुखी हो, पिताजी।

हरिश्चन्द्र नही नही । यह मुझसे नहीं हो सकता, नही हो सकता ! पुत्र ! तुम यहा से चले जाओ ! चले जाओ ! (रोता है)

रोहित मैं तो कायर था, पिता जी, इस कारण मृत्युभय से भाग गया था, किन्तु आप तो एक वीर, प्रतापी, सत्यवादी राजा हैं। आप इस प्रकार धैर्य क्यो छोड रहे हैं ? आपने वरुण देव को वचन दिया था। आप उसका पालन कीजिए। आप मेरे मोह म पड-कर कर्तव्यच्युत न हो पिताजी। आप विचार कर देखें। क्या आपके प्राण दे देने से वरुण देव मेरी बलि छोड देंगे ? हम दोनो के प्राण जाएँ, इससे अच्छा क्या यह नही है कि एक मेरे प्राण जाएँ तथा आपके वचन की रक्षा हो। आपकी अर्जित कीर्ति मे वृद्धि हो।

हरिश्चन्द्र नही नहीं ! यह नही हो सकता ! नही हो सकता ! (रोता गिड-गिडाता है) वरुण देव ! वरुण देव ! आप देवता हैं ! आप राजाओ के राजा हैं ! आपको मेरे इस निरीह, पितृभक्त पुत्र की बलि लेकर क्या प्राप्त होगा ? (पुकारता है) वरुण देव ! वरुण देव !

[नपथ्य से मेघगजन और गडगडाहट की आवाजें आती हैं। बिजली चमकने का प्रकाश मच पर पडता है। फिर नपथ्य से खडाऊँ की आवाजें पास आती सुनायी पडती हैं]

वरुण (प्रवेश कर) मैं आ गया, राजा हरिश्चन्द्र ! कहो, तुमने मेरा आह्वान क्यो किया ? बोलते क्यो नही ? ओह मैं समझा। मैं जानता था हरिश्चन्द्र कि यही होगा।

रोहित नही देव। अब मैं स्वय उपस्थित हूँ। अब पिताजी अपना वचन पूरा करेंगे।

हरिश्चन्द्र नही, यह मुझसे नही होगा। पुत्रबलि मैं न दे सकूगा। हाँ। मैं अपन प्राणोत्सग के लिए तत्पर हूँ।

रोहित नही-नही पिता जी। ऐसा मैं नही होन दूगा। मेरी बलि दकर आप अपना वचन पूरा करें, अपनी प्रतिष्ठा पर कलक लगने से बचायें मुझे आज्ञा दें कि मैं बलि का आयोजन करूँ।

हरिश्चन्द्र नही, तुम बलि का आयोजन नही कर सकते। तुत्सुओ के राज-पुरोहित महर्षि विश्वामित्र ने नरबलि पर प्रतिबन्ध लगा दिया है।

वरुण (जीभ ऐंठकर) महर्षि विश्वामित्र ! विश्वामित्र न होते तो विश्व मे तुम्हारी सत्यवादिता का ढोल पीटकर तुम्हे आकाश पर चढा दिया है। जनता चिल्ला चिल्ला तुम्हारा गुणगान करती है—'चन्द्र टरै, सूरज टरै, टरै न सत्य विचार।' अब जनता आकर देखे, तुम्हारी सत्यवादिता ! विश्वामित्र को क्या ज्ञात था कि राज पाट दान दे देना सरल है, पत्नी तथा स्वय का विक्रय कर देना भी कठिन नही, पुत्र को मृत देखकर हृदय की व्यथा सहन कर लेना भी सभव है किन्तु पुत्र की बलि देकर अपने वचन का पालन करना

हरिश्चन्द्र असभव है, देव असभव है !

वरुण तो बुलाओ अपने विश्वामित्र को इसे सभव करने के लिए। अन्यथा वे ही अब घोषणा करें कि हरिश्चन्द्र सत्यवादी नही है, वह वचन देकर उसे पूरा नही करता।

हरिश्चन्द्र देव, आप देव हैं, विश्वामित्र महर्षि हैं। मेरे लिए आप दोनो पूज्य हैं। ऋषि ने मेरे लिए जो किया, उसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ। आपने जो मुझे दिया, उसके लिए आपका भी कृतज्ञ हूँ। हम मानव आपका आदर सत्कार, पूजा-पाठ, विनय प्रार्थना करने के अतिरिक्त कर ही क्या सकते हैं? आप लोग प्रसन्न होकर जो देते हैं, हम शीश नवाकर ले लेते हैं आप लोग हमसे अप्रसन्न होकर जो ले लेते हैं हम शीश झुकाकर दे देते हैं। हमारा वश ही क्या है? महर्षि विश्वामित्र ने मनुष्य जाति को नई गरिमा प्रदान की है। उन्होने घोषणा की है कि मनुष्य पशु नही है, उसकी बलि नही दी जा सकती, उसका वध नही किया जा सकता, उसका क्रय विक्रय नही किया जा सकता चाहे वह आर्य हो, अनार्य हो अथवा दास हो। सब मानव एक समान हैं।

वरुण हूँ। क्या तुम्हे यह ज्ञान नही कि मुनि वसिष्ठ महर्षि विश्वामित्र को राजपुरोहित पद से हटाकर स्वय राजपुरोहित पद पर आसीन होने जा रहे हैं और उन्होने घोषणा कराई है कि आर्य-आर्य हैं अनार्य आर्य नही हो सकते, दोनो समान कदापि नही हो सकते। कोई भी अनार्य किसी भी आर्य अथवा आर्या के साथ दुर्व्यवहार करे तो उसका वध कर दिया जाना चाहिए।

हरिश्चन्द्र देव यह ऋषियो मुनियो तथा देवो के मध्य परस्पर द्वन्द्व का विषय है। इनके मध्य हम सामान्यजन कहाँ आते हैं? हम तो यही जानते हैं कि जो कार्य महर्षि विश्वामित्र कर रहे हैं किसी

भी ऋषि ने नही किय । उन्होंने स्वेच्छा से राजा का पद त्याग-कर राजपुरोहित का पद स्वीकार किया था तथा अपने नाम विश्वरथ का भी त्याग कर, विश्वामित्र, विश्व का मित्र नाम लिया था। क्या उन्हे राजपुरोहित के पद का मोह होगा, देव ? वे तो एक वीतरागी की भाति राजधानी मे न रहकर आश्रम मे रहते हैं और आर्यो-अनार्यों को एक समान शिक्षा-दीक्षा देते हैं। उन्ही के प्रताप से सारे राज्य मे शान्ति और सौहार्द है और सबकी उन्नति हो रही है। जातिभेद अथवा रगभेद के कारण किसी को भी कोई यातना नही दे सकता। निबलो, दुखियो तथा सतप्तो की सहायता तथा रक्षा के लिए महर्षि सदा सन्नद्ध रहते हैं।

वरुण यह सब उनका ढकोसला है। अब भण्डा फूटने मे अधिक विलम्ब नही होगा। तुम्हे ज्ञात है कि शबर के पुत्र अनाय राजा भेद ने ससैन्य जाकर श्रजय की पुत्री तथा सेनापति हयश्व की पुत्रवधू शशीयसी का अपहरण कर लिया है। ऋषि वसिष्ठ ने घोषणा की है कि आय राजा अनाय भेद का सहार कर उसे इस महा अपराध का दण्ड दें। उन्होंने यह भी घोषणा की है कि आयत्व के उद्धार तथा अनार्यो के निमित्त ही देवो ने उन्हे आर्यावर्त के राजपुरोहित का पद प्रदान किया है। किन्तु विश्वामित्र क्या कर रहे हैं, तुम्हे ज्ञात है ?

रोहित पिता जी को कदाचित ज्ञात न हो। इन्हे तो आपने शैय्यासेवी बना दिया है। आपको तो सब ज्ञात है देव ! आप ही बताने की कृपा करें।

वरुण महर्षि विश्वामित्र का कहना है कि अनाय राजा भेद का सहार करना महा अपराध होगा। क्या कोई आय किसी अनार्या का अपहरण करता है तो ऋषि वसिष्ठ उस आय के सहार का आदेश देते हैं ? न्याय मे ऐसा अन्तर क्या ? एक ही अपराध के लिए आय को कोई दण्ड नही और अनाय को मृत्युदण्ड। यह नही होना चाहिए। साथ ही उनका यह भी कहना है कि अनाय राजा भेद तथा शशीयसी के बीच प्रेम सम्बन्ध था। अनाय राजा भेद ने बलात शशीयसी का अपहरण नही किया है। बोलो, अब तुम्हारा क्या कहना है ?

हरिश्चन्द्र क्षमा करें देव। महर्षि विश्वामित्र का कथन ही मुझे न्यायोचित लगता है।

वरुण — हूँ। तो बुलाओ अपने विश्वामित्र को। वे आकर तुम्हारे और मेरे बीच के विवाद को सुलझाएँ।

हरिश्चन्द्र — महर्षि को आप इस विवाद मे न घसीटें देव। क्षमा करें, यह विचार मेरे लिए बडा दुखद है कि आप-सब लोग जैसे भी सभव हो महर्षि को अपमानित कर उन्हे ऋषिपद से भी च्युत करना चाहते हैं।

वरुण — क्या आर्यों का अपमान करने तथा उनकी श्रेष्ठता नष्ट करने का अधिकार उन्ही को है ?

हरिश्चन्द्र — जो भी हो, कृपा कर मुझे आप इस दुरभि सधि का भागीदार न बनाए !

वरुण — तो तुम अपने वचन का पालन करो। अपने पुत्र की बलि मुझे दो।

हरिश्चन्द्र — आप मेरी बलि ले लें देव !

रोहित — नही देव ! वचन मेरी बलि के लिए दिया गया है। मैं प्रस्तुत हूँ।

हरिश्चन्द्र — मेरे जीवित रहते यह नही हो सकता। पुत्र रोहित, तुम यहाँ से जाओ।

रोहित — मैं आपको इस दारुण दशा म छोडकर कही नही जा सकता पिता जी !

वरुण — तो एक विकल्प रखता हूँ। स्वीकार हो तो वसा ही करो।

हरिश्चन्द्र — आज्ञा दें देव ?

वरुण — अपने पुत्र के स्थान पर किसी अन्य तरुण की बलि दो। मैं सतुष्ट हो जाऊँगा।

हरिश्चन्द्र — नही-नही। यह भी नही कर सकता। कोई अन्य तरुण भी तो अपने पिता का ही पुत्र होगा, देव। कोई भी पिता अपने पुत्र को बलि के लिए नही देगा।

रोहित — पिता जी, मेरे ज्ञान मे एक ऐसा तरुण है जिसे उसका पिता सदा यातना देता रहता है। वन मे यह तरुण मुझे मिला था। वह यातना से मुक्त होने के लिए आत्महत्या करने जा रहा था। मेरे समझाने से उसने आत्महत्या करने का विचार त्याग दिया था। ढूढने पर वह मिल जाएगा। आप वरुण देव का विकल्प स्वीकार कर लें।

हरिश्चन्द्र — वह तरुण मिल भी जाए तो कौन पुरोहित या ऋषि ब्राह्मण नर बलि का यज्ञ कराएगा ?

वरुण महर्षि विश्वामित्र करायेंगे। विश्व के वही तो मित्र हैं। सकट म पडे मनुष्यो का उद्धार करने वाले वही तो हैं न। क्या वे तुम्हे इस महासक्ट से नही उबारेंगे ?

रोहित उबारेंगे, देव। महर्षि अवश्य हमे उबारेंगे। वे किसी भी सक्टग्रस्त मनुष्य की गुहार अनसुनी नही करते।

वरुण यही तो मुझे देखना है। (हँसकर) विदा होने के पूव एक बार पुन मैं तुम्हें सावधान कर रहा हूँ हरिश्चन्द्र ! जब तक तुम बलि नही दे दोगे, तुम्हारा रोग बढता जाएगा तथा शरीर क्षीण होता जाएगा

रोहित (चीखता है) वरुण देव ! वरुण देव ! मेरे पिता जी को तो

वरुण *अब कुछ नही सुनूगा। मैं विदा लेता हूँ।*

[वरुण जाता है। नेपथ्य से खडाऊँ की आवाज़ आकर तिरोहित होती हैं। मच पर अधकार छा जाता है फिर प्रकाश होता है तो नेपथ्य मे डुगडुगी बजने की आवाज आकर बन्द होती है और डुगडुगी बजाने वाले के साथ दूत मच पर आता है।]

दूत महाराज हरिश्चन्द्र के आदेश से मैं यह घोषणा पढ रहा हूँ। सभी आयजन ध्यान से सुनें। वरुण देव को बलि देन के निमित्त एक तरुण की आवश्यक्ता है, जो पिता बलि के निमित्त अपना पुत्र प्रदान करने को प्रस्तुत हो वह अविलम्ब महाराज के समक्ष उपस्थित हो। महाराज उसे मुहमागा मूल्य चुकाएँगे। (चलते हुए) *महाराज के आदेश से मैं यह घोषणा*

शुन शेप दूत ! दूत ! रुको ! मेरी बात सुनो ! क्या यह घोषणापत्र मुझे पढने को दे सकते हो ?

दूत क्यो ? तुम इसे पढकर क्या करोगे ! क्या तुम्हें सुनाई कम देता है ?

शुन शेप नही मुझे सुनाई तो ठीक देता है। किन्तु इस घोषणा पर मुझे विश्वास नही होता। क्या राजा हरिश्चन्द्र सचमुच नरबलि दना चाहते हैं ? नरबलि पर तो प्रतिबन्ध लगा है !

दूत तुम्हे विश्वास नही होता, तो लो, घोषणापत्र स्वय पढकर देख लो। इस पर जो लिखा है, वही मैं सुना रहा हूँ

शुन शेप वरुण देव को बलि देन के निमित्त एक तरुण की आवश्यक्ता है जो पिता अ अ अ सुनो, दूत। तुम मेरे पिताजी से

मिलो। कदाचित वे मुझे बलि के निमित्त देने को प्रस्तुत हो जाएँ।

दूत (चकित) क्या ? क्या तुम सचमुच स्वयं अपनी बलि देने को प्रस्तुत हो ?

शुनःशेप हाँ, मैं प्रस्तुत हूँ। किन्तु इसके लिए पिता जी की अनुमति लेना आवश्यक है।

दूत क्या वे अनुमति दे देंगे ?

शुनःशेप मुझे विश्वास है कि वे अनुमति दे देंगे। वे मुझे सदा शारीरिक यातना देते हैं। वे मुझे चोरी करने के लिए भी विवश करते हैं। उन्हें प्रतिदिन पीने को मदिरा चाहिए। वे दरिद्र हैं। वे धन के लिए निश्चय ही मेरा विक्रय कर सकते हैं। तुम मेरे साथ चलो और पिताजी से मिल लो।

दूत (स्वगत) संसार में ऐसे भी पिता पुत्र हैं, मुझे ज्ञात न था। मैं कई दिनों से यह घोषणा करता घूम रहा हूँ, लोग सुनकर घृणा से मेरी ओर दृष्टिपात कर हट जाते थे। यह कार्य सम्पन्न हो गया तो महाराज की प्रसन्नता की सीमा नहीं रहेगी। उन्हें नया जीवन प्राप्त होगा।

[दोनों जाते हैं। मंच पर अंधकार होता है फिर प्रकाश होता है तो मंच पर अजीगर्त, शुनःशेप और दूत दिखाई देते हैं। अजीगर्त चटाई पर बैठा है, उसके हाथ में मदिरा पात्र है।]

शुनःशेप पिताजी, यह महाराज हरिश्चन्द्र का दूत है। निकट के ग्राम में महाराज की एक घोषणा करता घूम रहा था। इसे मैं आपसे मिलाने ले आया हूँ।

अजीगर्त क्यों ? इसे तुम मेरे पास क्यों ले आये ?

शुनःशेप महाराज हरिश्चन्द्र को बलि देने के निमित्त एक तरुण की आवश्यकता है। जो पिता अपने पुत्र को बलि के निमित्त देगा, उसे महाराज मुँहमाँगा धन देंगे। आपको मदिरा के लिए धन चाहिए न ?

अजीगर्त क्या दूत क्या मेरा पुत्र सत्य कह रहा है ?

दूत हाँ महाशय, वह सत्य कह रहा है। मैं यही घोषणा करता घूम रहा हूँ।

अजीगर्त हाँ ! (गम्भीर) कौन ऋषि नरबलि-यज्ञ कराने के लिए प्रस्तुत हो गए हैं ?

दूत	यह मुझे ज्ञात नही। वह महाराज ही बता सकते हैं। क्या आप
अजीगत	मुझे विचार करने के लिए कुछ समय चाहिए। तुम अब लौट जाओ। महाराज से कहो कि मैं कल उनसे भेंट करूँगा।
दूत	धन्यवाद, महाशय ! प्रणाम ! आप कल अवश्य पधारिएगा। मैं सिंहद्वार पर आपकी प्रतीक्षा करूँगा। आपका शुभ नाम ?
अजीगत	अजीगत अंगिरा।
दूत	और आपके सुपुत्र
अजीगत	उसका नाम शुन शेप है। देख रहे हैं न कितना सुन्दर, सुशील तथा प्रतिभावान तरुण है। महाराज को आप बता दीजिएगा।
दूत	अवश्य-अवश्य ! मैं जाता हूँ !
अजीगत	क्यो, शुन शेप ? तुम बलि होने को प्रस्तुत हो ?
शुन शेप	हा पिताजी ! मैं तो घोषणा सुनते ही प्रस्तुत हो गया था। तभी तो दूत को आपके पास ले आया। आपको मुँहमागा धन मिलेगा और मुझे
अजीगत	तुम्हे क्या मिलेगा ?
शुन शेप	मुझे ऋषियो के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त होगा। उनके मुखारविन्दु से मन्त्रोच्चारण सुनने का सुयोग प्राप्त होगा। देव वरुण मेरी बलि लेने आएँगे। तो मुझे उनके भी दर्शन होगे।
अजीगत	किन्तु नरमेध सपन्न कैसे होगा ? कौन आर्य ऋषि मुनि ब्राह्मण नरमेध कराएगा ? मुझे तो आशा नही है कि कोई भी यह यज्ञ कराने को प्रस्तुत होगा।
शुन शेप	दूत कह रहा था कि महाराज हरिश्चन्द्र का जीवन सकट मे है जब तक बलि न दे दी जाएगी, वरुण देव उन्हे शापमुक्त कर जीवनदान नही देंगे। अतएव सभव है कि कोई ऋषि महाराज के जीवन की रक्षा के लिए यह यज्ञ कराने को प्रस्तुत हो जाए।
अजीगत	आर्यावर्त मे तो ऐसे एक ही ऋषि हैं, विश्वामित्र, जो सकटग्रस्तो की सहायता करने के निमित्त तत्पर रहते हैं। क्या वे यह यज्ञ करने के लिए प्रस्तुत होगे ?
शुन शेप	हो सकते है।
अजीगत	किन्तु वे तो कहते हैं कि मनुष्य अवध्य है। भला वे नरमेध कैसे कराएँगे ?
शुन शेप	उन्होने ही तो राजा हरिश्चन्द्र को सत्यवादी हरिश्चन्द्र के रूप म

प्रतिष्ठित किया था। सम्भव है कि इस महासंकट के अवसर पर वे उनकी जीवनरक्षा करने आएँ।

अजीगत तब तो ठीक है। कल मैं राजा हरिश्चन्द्र के पास अवश्य जाऊँगा (अट्टहास करता है)।

[मंच पर अंधकार छाता है, फिर प्रकाश होता है तो नेपथ्य से हरिश्चन्द्र के कराहने की आवाज़ें आती हैं। मंच पर विश्वामित्र कुशासन पर बैठे दिखाई देते हैं।]

रोहित (रोहित व्याकुल होकर चीखता हुआ प्रवेश करता है) महर्षि! रक्षा कीजिए! मेरे पिताजी की रक्षा कीजिए, इन्हें क्या हो रहा है?

विश्वामित्र कौन है... ओह राजकुमार रोहित? तुम्हारे पिताजी को क्या हुआ है? क्या बाहर रथ में पड़े वे कराह रहे हैं?

रोहित हाँ महर्षि! आप चलकर उन्हें देखिए तो!

विश्वामित्र (पुकारते हैं) जमदग्नि! जमदग्नि! बाहर आओ। देखो। महाराजा हरिश्चन्द्र आए हैं। उनकी दशा ठीक नहीं लगती।

जमदग्नि (प्रवेश कर) मामाजी!

विश्वामित्र देखो, बाहर रथ में महाराज को देखो!

जमदग्नि (बाहर जाकर नेपथ्य से) मामा जी... इनकी दशा तो शोचनीय है। राजकुमार तुम इन्हें इस दशा में यहाँ क्यों ले आए?

रोहित ये माने नहीं ऋषिवर! मैंने तो इन्हें रोका था। आपको तो सब ज्ञात है। वरुण देव हम पर कुपित हैं। वे नरबलि लिये बिना शांत न होंगे। हम बलि के लिए एक तरुण मिल गया है। किन्तु कोई भी ऋषि मुनि नरमेध कराने को प्रस्तुत नहीं हैं। अब पिताजी स्वयं इस दशा में भी आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं। बलि में अब अधिक विलम्ब हुआ तो मेरे पिताजी के प्राण नहीं बचेंगे। (रोता है)

विश्वामित्र धैर्य रखो वत्स! वरुण देव नरबलि लेना ही चाहते हैं तो उन्हें नरबलि मिलेगी। मैं नरमेध सम्पन्न कराऊँगा। महाराज को मैं वरुण देव के क्रोध का आखेट नहीं बनने दूँगा। तुम महाराज को राजमहल में ले जाओ और यज्ञ का आयोजन करो। कल प्रातः सूर्य के उदित होने पर मैं पूर्णाहुति दूँगा। बलि तरुण का वध करनेवाला भी मिल गया है न?

रोहित मैं अभी खोज निकालूँगा ऋषिवर! उसकी चिन्ता आप न करें।

जब बलि के लिए तरुण मिल गया है तो वध करनेवाला भी अवश्य मिल जाएगा। अभी भी अर्थलोलुपों का अभाव नहीं है।

जमदग्नि अब तुम जाओ, वत्स ! सूर्यास्त हो रहा है। महाराज की दशा गम्भीर है।

रोहित जा रहा हूँ। (जाता हुआ) पिताजी, महर्षि ने आपकी प्रार्थना स्वीकार कर ली है। वे कल प्रात ही पूर्णाहुति देंगे। आप स्वस्थ हो जाएँगे, पिताजी !

हरिश्चन्द्र (नेपथ्य से) कराहते हुए। महर्षि से कहो पुत्र कि वे अपनी चरण-रज मुझे देने की कृपा करें। मुझमें तो इतनी शक्ति नही है कि अपने हाथ उठा सकूँ।

विश्वामित्र (मच से) मैं आपको चिरायु होने का आशीर्वाद देता हूँ राजन ! जीवित रहते कोई भी आपका जीवन नही ले सकता। बस, कुछ समय और आप कष्ट सह लें। ले जाओ, राजकुमार, इन्हें ले जाओ।

[नेपथ्य से रथ के घोडो की टापो की आवाजें फेडआउट होती हैं।]

जमदग्नि मामाजी ! क्या आप सचमुच नरमेध कराएँगे ? बीस वर्षों तक तपस्या कर आपने मानव कल्याण के लिए जिस सत्य को प्राप्त किया उसे आप स्वय ही विनष्ट कर देंगे ?

विश्वामित्र (दु खी) क्या करूँ जमदग्नि ? मुझे लगता है कि देव मेरे द्वारा प्रतिपादित जीवनदर्शन के सत्य का परीक्षण करने को तत्पर हैं। यदि मैं नरमेध कराता हूँ तो स्वयं अपने ही द्वारा प्रतिपादित सत्य के प्रति द्रोह करता हूँ। यदि नही करता हूँ तो एक सकट-ग्रस्त मनुष्य के प्रति अपने कर्तव्य से च्युत होता हूँ। देव ने मुझे जिस धर्मसकट म डाल दिया है

जमदग्नि ऐसा आप समझते हैं तो क्यो नही आप स्वय वरुण देव से प्रार्थना करते कि वे आपको ऐसे धर्मसकट मे न डालें ?

विश्वामित्र उन्होंने जान-बूझकर मुझे इस सकट मे डाला है, वे मेरी प्रार्थना नही सुनेंगे।

रोहिणी (आकर) आप लोग क्या वार्ता कर रहे हैं ?

जमदग्नि मामा जी घोर धर्मसकट म पड गये हैं मामी जी !

रोहिणी (चकित) क्यो ? अचानक ऐसा क्या हो गया ?

विश्वामित्र देवि ! महाराजा हरिश्चन्द्र के प्राण सकट मे हैं। उन्हें हमारी सेवा की आवश्यकता है। हम अभी उनकी यज्ञशाला म चलेंगे। आप और देवदत्त भी चलें।

जमदग्नि हम सब भी चलेंगे ?

विश्वामित्र चलो, सब लोग चलो ! पत्नी, पुत्र सभी स्वजन चलो तथा मेरे पतन का दृश्य देखो !

रोहिणी (व्याकुल) यह आप क्या कह रह हैं स्वामी ? अभी जमदग्नि आपके धर्मसकट की बात कर रहे थे और अब आप अपने पतन की बात कर रहे हैं ?

विश्वामित्र जमदग्नि, इन्हें सब बता दो और प्रस्थान की तैयारी करो।

[नेपथ्य से घोडो की टापो की आवाजें आती हैं]

यह कौन हमारी ओर आ रहा है ? (हाथ जोडकर) देव, महाराज को कल तक का समय देने की कृपा करें। कल प्रात ही आपको बलि मिल जाएगी। (टापो की आवाजें पास आकर रुकती हैं)।

दूत (आकर) महाराजा हरिश्चन्द्र का दूत आप सबको प्रणाम करता है

जमदग्नि सब समाचार ठीक है न ? महाराज

दूत महाराजा की दशा अत्यधिक गम्भीर हो गई है। उनके मुह से अब बोली भी नही निकलती। राजकुमार रोहित न सदेश भजा है कि बलि-तरुण को वध करने वाला मिल गया है। ऋषिवर शीघ्र पधारें तथा यज्ञ-सामग्री को सहज लें।

जमदग्नि एक राक्षस ने अपने पुत्र को बलि के लिए दे दिया तथा दूसरे राक्षस न बलि तरुण को वध करने का काय सँभाल लिया। ये क्रूर व्यक्ति कौन हैं ?

दूत जिस व्यक्ति ने अपने पुत्र को दिया था वही वध करने के लिए भी प्रस्तुत है, ऋषिवर ! उसन एक सौ गौएँ पुत्र के लिए ली थी और एक सौ गौएँ वध करने के लिए ली हैं।

रोहिणी धन्य है। विश्व मे ऐसे पिता भी हैं, यह कौन सोच सकता है ? नरमध कौन करेगा दूत ?

जमदग्नि आप अन्दर चलिए, मामीजी मैं आपको सब बताता हूँ (दोनो जाते हैं)।

विश्वामित्र तुम चलो, दूत। हम लोग अभी आ रहे हैं। राजकुमार से कहना, वे चिंता न करें।

दूत आप लोगों को ले जाने के लिए रथ आ रहा होगा। आप प्रतीक्षा करें। (जाता है।)

[घोड़े की टापों की आवाजें दूर जाकर फेडआउट होती हैं।]

रोहिणी (आकर) क्षमा करें, स्वामी, तो मैं एक बात पूछूं ?

विश्वामित्र पूछिए, देवि !

रोहिणी यदि आप समझते हैं कि नरमेध कराने से आपका पतन हो जाएगा, तो आप इसे करवा ही क्यों रहे हैं ?

विश्वामित्र जमदग्नि ने तुम्हें यह नहीं बताया ? वरुण देव की यही इच्छा है।

रोहिणी देव की इच्छा के अधीन कार्य करने से किसी का पतन क्या होगा ? देव इच्छा तो सर्वोपरि है न ?

विश्वामित्र हां ? देव ही मेरा पतन देखना चाहते हैं !

जमदग्नि (आकर) मामा जी, मैं समझता हूं कि आपके लिए ऐसी आत्म ग्लानि का कोई कारण नहीं। कौन जाने, इस अकल्पनीय कांड के पीछे देव का क्या उद्देश्य है ? आपने अपने तप की शक्ति से सत्य की स्थापना की है नई सृष्टि का सृजन किया है, आर्यत्व को नया अर्थ दिया है

रोहिणी आपके प्रताप से ही कितने अनार्यों को आर्यत्व प्राप्त हुआ है, स्वामी !

विश्वामित्र रोहिणी ! जमदग्नि ! इस सबका यश मुझे न दो। यह सब देव की कृपा से ही सम्भव हुआ था। आज वही देव मुझसे यह नरमेध करवाकर

रोहिणी नहीं नहीं ! यह सम्भव नहीं है। एक वसिष्ठ को छोड़कर सभी ऋषि-मुनि आपके आदेशों का सम्मान करते हैं स्वामी !

विश्वामित्र मुनि वसिष्ठ की बात मत करो देवि ! उनका मार्ग भिन्न है। जैसे दो मार्ग और मेरा मार्ग अलग-अलग हो रहते हैं, वैसे ही मुनि वसिष्ठ का मार्ग अलग-अलग ही रहेगा। आज मुझे लगता है कि वरुण देव का मार्ग भी मुनि वसिष्ठ का ही मार्ग है। अन्यथा वे नरबलि की मांग नहीं करते, मानव को पशुओं की भांति क्रय विक्रय तथा बलि की वस्तु नहीं समझते ! राजा

हरिश्चन्द्र के प्राणो के रक्षार्थ यह नरमेध करवाने के पश्चात मैं ऋषिपद से च्युत हो जाऊँगा, तब इस पृथ्वी को अपने भार से पीडित करने का कोई अधिकार मुझे नहीं रहेगा। मैंने तो साधना तथा अनुभव से जो सत्य प्राप्त किया था, उसका समाज मे प्रसार किया है। मैंने घोषणा की थी कि मानव मानव मे भेद असत्य है, आयत्व वर्ण मे, जाति मे रक्त मे नही, सस्कार मे है

रोहिणी — कौन कहता है कि यह असत्य है? (सिसकती है।)

विश्वामित्र — वरुण देव स्वत कहते हैं अन्य किस प्रकार कहा जाता है? मुझे अब भी आशा है और यही आशा लेकर मैं चल रहा हूँ कि मैं अपने सत्य की शक्ति से राजा हरिश्चन्द्र को शापमुक्त करूँगा तथा नरमेध रुकवा सकूगा। यदि मैं असफल रहा तो समझ लूगा, मनुष्य अकिंचन है तथा केवल देव ही शक्तिमान है, मनुष्य का अनुभवजन्य सत्य कुछ नही, देव की इच्छा ही सब कुछ है। उस स्थिति मे देव की आराधना करने योग्य मैं नही रहूँगा।

रोहिणी — (रोती हुई) तब आप क्या करेंगे, स्वामी?

विश्वामित्र — रोहिणी! देवी रोहिणी! तुम भगवान अगस्त्य की सुपुत्री हो तपस्विनी हो! हमारे तीन पुत्र हैं तुम उनका ध्यान रखना, उन्हे भरतो की कीर्तिवृद्धि करने का पाठ पढाना।

जमदग्नि — (व्याकुल) मामाजी, आपका मन्तव्य क्या है?

विश्वामित्र — सत्य की रक्षा करना! सत्य की रक्षा के लिए जीवन होम कर देना! यदि वरुण देव मुझसे नरमेध करवाएँगे, तो मैं जीवित रहते मृत हो जाऊँगा। किन्तु

रोहिणी — किन्तु क्या, स्वामी?

विश्वामित्र — यह अवसर आने पर मैं वरुण देव को ही बताऊँगा। तुम, सब लोग ध्यान से सुनना। वह मेरा अन्तिम उद्घोष होगा। मैं तो मानव गौरव का तेज अवलोकन करने वाला नेत्र हूँ! मनुष्य का तेज विनष्ट हो, यह देखने के लिए मेरे नेत्र नही हैं।

[मच पर अधकार छाता है। कुशासन पर विश्वामित्र बैठे हैं। उनके अगल-बगल रोहिणी और जमदग्नि फर्श पर बैठे हैं।]

दूत — (आकर) महर्षि! अजीगर्त आपसे मिलने आया है।

विश्वामित्र कौन अजीगत ?

दूत वही, जिसने बलि के लिए अपना पुत्र दिया है तथा

विश्वामित्र यह मुझसे क्यों मिलना चाहता है ? क्या उसने अपना निर्णय परिवर्तित कर दिया है ?

दूत मुझे ज्ञात नही । आपकी आज्ञा हो तो मैं उसे बुला लूँ ।

रोहिणी बुला लीजिए, स्वामी । ज्ञात तो हो कि वह किस मन्तव्य से आया है ?

जमदग्नि हाँ, हाँ मामाजी, आप उसे बुला लीजिए !

विश्वामित्र मैं तो

रोहिणी किन्तु मैं देखना चाहती हूँ कि वह कौन सा पिता है जो अपने पुत्र को बलि के लिए दे ही नही, उसका अपने हाथ से वध भी कर सकता है ।

जमदग्नि हाँ हाँ मामा जी, आप बुला लीजिए । कौन जाने, देव ने ही किसी मन्तव्य से उसे आपसे मिलने को प्रेरित किया हो ?

विश्वामित्र अच्छा, दूत, उसे लिवा लाओ ।

दूत जो आज्ञा ! (जाता है)

रोहिणी (उत्सुक) हे प्रभु क्या होने का है !

अजीगत (आकर) क्या अधम अजीगत का प्रणाम अधमाद्धारक महर्षि स्वीकार करने की कृपा करेंगे ?

विश्वामित्र देव तुम्हारी रक्षा करें। कहो, मुझसे ऐसा क्या काम है कि इतनी रात्रि में

अजीगत भगवन, मैं एकान्त में आपसे कुछ निवेदन करने आया हूँ । पास ही नदी बह रही है । दो क्षण के लिए तट पर चलने का कष्ट करें, तो बडी कृपा होगी। मेरी बात अन्य कोई भी सुन लेगा, तो बडा अनर्थ हो जाएगा।

विश्वामित्र क्या अर्थ तथा अनर्थ का ज्ञान तुम्हे है, अजीगत ? तुम्हारा आचरण तो वनले पशुओ जैसा है ।

अजीगत (कृत्रिम दयनीयता से जरा हँसकर) विश्व के मित्र दीनो, असहायों, सतप्तो, अधमो, पापियो के सहायक ! क्या आप मेरी बात भी नही सुनिएगा ? मैं आपके चरणो मे उपस्थित हुआ हूँ । नही, आप ऐसा नही करेंगे । आप सतप्त राजा हरिश्चन्द्र के प्राणो की रक्षा के लिए अपने जीवन का सम्पूर्ण अर्जित यश बलिदान करने के लिए उद्यत पर दुःखकातर महर्षि, क्या अपने बचपन के सहपाठी का तिरस्कार करेंगे ?

विश्वामित्र (चकित) सहपाठी ?

रोहिणी (चकित) क्या तुम मेरे स्वामी के सहपाठी हो ?

जमदग्नि (चकित) क्या तुम मेरे मामाजी के सहपाठी हो ? नहीं नहीं ! तुम्हारे जैसा राक्षस मेरे मामा जी का सहपाठी नहीं हो सकता।

अजीगत यह मेरा दुर्भाग्य है कि मैं इस अधम दशा को प्राप्त हुआ हूँ कि मेरे बाल सहपाठी आज मुझे पहचान नहीं रहे हैं। (कृत्रिम हँसी के साथ) महर्षि विश्वामित्र ! आप तो भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों के महाद्रष्टा हैं ! तनिक स्मरण करने का कष्ट तो करें। इस अधम ने आपको मन्त्रोच्चारण सिखाया था। यह राक्षस, जो आपके समक्ष नतमस्तक खड़ा है, अजीगत अंगिरा है।

विश्वामित्र (चकित) अजीगत अंगिरा ?

रोहिणी (चकित) क्या तुम भी भगवान अगस्त्य के शिष्य हो ?

जमदग्नि (चकित) अजीगत अंगिरा ? जिसे भगवान अगस्त्य ने शाप दिया था।

विश्वामित्र पतित ! तूने यहाँ आने का साहस कैसे किया ?

अजीगत क्षुब्ध न हो, पतितों के उद्धारक।

रोहिणी तुम शाप से अभी मुक्त नहीं हुए ?

अजीगत (कृत्रिम हँसी के साथ) शाप से मुक्त होने के निमित्त ही तो आज मैं मुक्तिदाता के चरणों में उपस्थित हुआ हूँ। यही अवसर प्राप्त करने के लिए तो मैंने अपना पुत्र बलि के लिए विक्रय किया है, इसी कारण कल प्रात उसे वध करने का वचन भी मैंने दिया है। मेरा भी उद्धार कीजिए, महा उद्धारक महर्षि !

रोहिणी यह सब कितना रहस्यमय है ?

जमदग्नि वरुण देव ! वरुण देव ! आप कैसा नाच नचवाना चाहते हैं मेरे मामाजी से ?

रोहिणी हे ईश्वर, रक्षा करो ! रक्षा करो !

विश्वामित्र शापमुक्ति के लिए तुम भगवान अगस्त्य के पास जाओ। मेरे पास क्यों आए हो ?

अजीगत (व्यंग्य से) क्या इसी प्रकार आपने राजा हरिश्चन्द्र से कहा था कि तुम वरुण देव के पास जाओ, मेरे पास क्यों आए ?

विश्वामित्र तुम तो इस प्रकार अधिकार से बात कर रहे हो मानो शाप मुक्त होना तुम्हारा अधिकार हो। सब पतित ऐसा ही समझने

लगें, तो पतितो के लिए एक अलग आचारसंहिता का निर्माण हो जाए । तुम नितात सस्कारहीन हो गए हो ?

रोहिणी पतितो को तो आप सिर पर चढा लेते हो, यह उसी का परिणाम है, स्वामी !

अजीगत नही-नही, भगवती, इसका कारण मैं बताता हूँ । महर्षि विश्वामित्र ! क्या आपको स्मरण है कि भगवान अगस्त्य ने मुझे शाप कब दिया था ?

विश्वामित्र लगभग बीस वर्ष होने को आए ।

अजीगत धन्यवाद, महर्षि, धन्यवाद ! बीस वर्षों से मैं बहिष्कृतो की भाति कष्ट भोग रहा हूँ । आर्यो ने मुझे मारा पीटा, दुत्कारा । मुझे या मेरे बाल-बच्चो को उन्होने अपने ग्रामो के निकट फटकने भी न दिया । महर्षि अंगिरा की सतान को—भगवान अगस्त्य के शिष्य को कैसी कैसी दारुण यातनाएँ भोगनी पडी हैं, आप सहज ही कल्पना कर सकते हैं । ऐसे म क्या मेरे आय आचार-व्यवहार-सस्कार की रक्षा सम्भव थी ? तब भी मैं नही चाहता कि आपके जीवन की अर्जित सम्पूर्ण कीर्ति

विश्वामित्र अभी तुम अपने स्वार्थ की बात कर रहे थे और अभी तुम्हे मेरी कीर्ति की चिन्ता हो गई ?

अजीगत आप विश्वास कीजिए, महर्षि । मेरी शपथ और आपकी कीर्ति के बीच गहरा सम्बन्ध है । इसी कारण मैं आपसे एकात मे बात करना चाहता हूँ ।

रोहिणी इसकी बातें तो अधिक रहस्यमय होती जा रही हैं ।

जमदग्नि यह सब तो मुझे वरुण देव की बुद्धि का चमत्कार ही लगता है !

विश्वामित्र और मुझे इस पर गहरा सन्देह हो रहा है । अजीगत, सत्य आचरण तथा सत्य भाषण के लिए किसी दुराव छिपाव की आवश्यकता नही पडती । मेरा कोई भी आचार विचार गोपनीय नही है । मुझे कभी भी यह भय नही हुआ कि किसी भी सत्य बात से मेरा कोई अनय हो सकता है । ये दोनो मेरे स्वजन हैं । तुम्हे जो भी कहना हो, कहो । तुम्हारी बातो के ये साक्षी रहेंगे, यह अच्छा ही रहेगा । तुम मुझे सत्यवादी नही लगते !

अजीगत मैं सत्यवादी रहता तो मेरा जीवन अभिशप्त क्यो होता महर्षि, किन्तु इस समय आपके समक्ष मैं असत्य भाषण करने नही आया हूँ । आप विश्वास करें, मैं हृदय से कामना करता हूँ कि यह नरमेध आपके हाथ से न हो ।

रोहिणी चमत्कार ! चमत्कार !

जमदग्नि आप देखते जाइए, मामाजी ! वरुण देव अभी हमें कैसे कैसे चमत्कार दिखाते हैं।

विश्वामित्र हां हां, चमत्कार है ! किंतु तनिक इससे यह तो पूछो कि यदि यही इसकी मनोकामना है, तो इसने अपना पुत्र बलि के लिए क्यों दिया और वध करने के लिए स्वयं प्रस्तुत क्या हुआ ?

अजीगत इसका उत्तर मैं पहले ही आपको दे चुका हूं, महर्षि ! क्या आपका विस्मरण हो गया ?

रोहिणी हां हां, स्वामी, इसने बताया था कि शापमुक्त होने के लिए ही

जमदग्नि यह सब कैसा ऊहापोह है, मामाजी ?

विश्वामित्र इसी से पूछो कि यह इसका कैसा प्रलाप है !

अजीगत महर्षि ! मेरे ज्ञान में एक मार्ग है, जिससे आपकी इस अपकीर्ति से रक्षा हो सकती है। वही बताने मैं आया हूं।

विश्वामित्र कौन-सा मार्ग ?

अजीगत महर्षि ! आप मुझे शाप से मुक्त करें और एक सहस्र गौएं दें तो मैं आपकी रक्षा का उपाय बता सकता हूं।

रोहिणी क्या ?

जमदग्नि यह तो मुझे धूर्त लगता है मामाजी। आप आज्ञा दें तो मैं इसे भगा दूं।

अजीगत (धृष्टता से हँसकर) नहीं, जमदग्नि ऋषि मैं बटमार अथवा दस्यु नहीं हूं। मैं ऋषि अंगिरा का पुत्र तथा भगवान अगस्त्य का शिष्य हूं। आप धैर्य से मेरी बातें सुनिए ! महर्षि विश्वामित्र ! मैं इतने वर्षों से इसी अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था। मैंने अपार कष्ट झेले हैं। मैं एक सहस्र से एक धेनु भी कम नहीं लूंगा !

रोहिणी तुम

विश्वामित्र आप तनिक रुकिए, देवि ! अजीगत, मुझे अब ज्ञात ही नहीं कि भगवान अगस्त्य ने तुम्हें शाप क्यों दिया था, तो मैं उस शाप से तुम्हें मुक्त कैसे कर सकता हूं ?

अजीगत महर्षि मैं क्या बताऊं ? समझ लीजिए, मैंने श्राप को स्वयं आमन्त्रित किया था।

विश्वामित्र (चकित) कैसे ?

अजीगत एक रात्रि गुरुमाता भगवती लोपामुद्रा ने मेरे अंग में वस्त्र में

लिपटा हुआ एव सद्य जात शिशु को डालकर कहा, वत्स अजीगत तुम हमारे सर्वाधिक विश्वासपात्र शिष्य हो। इस शिशु को लेकर तुम वन मे चले जाओ तथा वही एक वष तक इस शिशु का पालन पोषण कर लौटना और इसे हमे सौंप देना।

रोहिणी यह दुष्ट तो हमे कथा गढकर सुनाने लगा स्वामी !

जमदग्नि अजीगत, तुम्हारे मस्तिष्क की मजूषा मे क्या क्या भरा है ? मामाजी, आप इस प्रकार गम्भीर क्या हो गए ?

विश्वामित्र तब ? आगे की घटना का वणन करो, अजीगत !

अजीगत मैंने भगवती की आज्ञा का पालन किया। उस सद्य जात शिशु को लेकर मैं वन म चला गया। मधु तथा फलो का रस पिलाकर मैंने उसे जीवित रखा। फिर उसके दूध की व्यवस्था की। इस हेतु मैं एक धेनु चुरा लाया। शिशु की माता बनकर मैंने उसका पालन पोषण किया। उसे मैं गोद म लेकर दूध पिलाता, खेलाता तथा सुलाता। मुझे उससे वैस ही प्रेम हो गया जैसे एक माता को अपने शिशु के साथ होता है। शनै -शनै एक वष बीत गया किन्तु शिशु को लेकर मैं भगवती के पास नही गया। मैं शिशु क मोहपाश म बँध गया था। उसे अपने से अलग करना मेरे लिए असम्भव हो गया था।

विश्वामित्र (गम्भीर) तब ?

रोहिणी वाह ! स्वामी, क्या आप इसकी कथा पर विश्वास कर रहे हैं ? क्या इस पुनहृता के शिशुप्रेम की बात पर विश्वास किया जा सकता है ?

विश्वामित्र मनुष्य बडा ही जटिल प्राणी है, देवि ! इसे बोलने दो ! आगे कहो अजीगत ?

अजीगत किन्तु भगवती ने मुझे खोज निकलवाया। एक दिन मैं नदी तट पर जब जल लेने गया तो कुछ बटुको ने मुझे पकड लिया और कहा, शिशु को लेकर चलो। भगवती लोपामुद्रा ने तुम्हे स्मरण किया है। तब मैं असत्य बोल गया, शिशु तो मर गया था। इसी भय से मैं भगवती के पास नही गया। तब वे मुझे पकडकर भगवती के पास ले आए। मैंने उनके समक्ष भी असत्य भाषण किया। किन्तु त्रिकालदर्शी भगवान अगस्त्य से मेरा असत्य भाषण छुप न सका। उन्होने क्रुद्ध होकर मुझे शाप दे दिया।

रोहिणी सुन ली आपने इसकी कथा, स्वामी ! यह मूख क्या शिशु के

साथ भगवती के पास नही रह सकता था। इसे असत्य भाषण करने की क्या आवश्यकता थी ?

जमदग्नि और क्या, जब भगवती का इस पर इतना विश्वास था तो वे इस शिशु के साथ ही अपने यहा नही रहने देती।

विश्वामित्र (खोये हुए से) हा, यह बात तो है। क्यो अजीगत ?

अजीगत महर्षि, ये नही समझते कि मैं उस समय यदि सत्य भाषण कर देता, तो प्रलय हो जाता, किन्तु आप तो समझ सकते हैं।

विश्वामित्र मैं कुछ नही समझता ! अब अपना प्रलाप समाप्त करो !

अजीगत (हँसकर) सहनशीलता के अवतार महर्षि ! इस प्रकार क्षुब्ध होना आपको शोभा नही देता।

विश्वामित्र क्या मैं मनुष्य नही हूँ ?

अजीगत यही तो आपकी महानता है जो सब ऋषियो म आपको शीर्षस्थ बनाती है। आपने इतने महान होकर भी मनुष्य तथा मनुष्यता को कभी दृष्टि से ओझल नही किया। इस समय भी एक मनुष्य के प्राणो की रक्षा के लिए ही आप

रोहिणी तुम प्रकरण परिवर्तित मत करो। तुम किसी प्रलय की बात कर रहे थ ?

जमदग्नि हाँ, इसके सत्य भाषण स प्रलय आ जाता ऐसा इसने कहा था।

अजीगत हा, मैने यह कहा था और अब भी मै अपनी बात पर अटल हूँ।

विश्वामित्र किन्तु क्यो, तुम्हारे सत्य भाषण से प्रलय क्या आ जाता ?

अजीगत बताना ही पडेगा, महर्षि आपको अब भी कुछ स्मरण नही आता ?

विश्वामित्र नही, मुझे कुछ भी स्मरण नही। तुम बोलो।

रोहिणी हाँ, शीघ्र बोलो, अजीगत !

जमदग्नि हा, हा, हमारे धैर्य की परीक्षा मत लो। रहस्य का उदघाटन करो।

अजीगत तो सुनिए। भगवती लोपामुद्रा तथा भगवान अगस्त्य न उस समय उस शिशु के जन्म को गोपनीय रखना आवश्यक समझा था क्योकि महर्षि तनिक उस समय की परिस्थिति का स्मरण करें। उस समय आपके तथा तत्सुओ के बीच शत्रुता चल रही थी। साथ ही भरतो मे भी आपका अनाय प्रेम न माना था। आपको स्मरण है न ?

विश्वामित्र बोलते जाओ।

अजीगत यदि उस समय उस शिशु के जन्म को गोपनीय न रखा जाता तो विश्वामित्र आपकी, भरतों की तथा अनार्यों की क्या-दशा होती ?

रोहिणी क्या कह रहे हो ? उस शिशु का मेरे स्वामी से क्या सम्बन्ध ?

जमदग्नि देखिए, मामा जी यह उस शिशु के साथ आपका सम्बन्ध जोड रहा है।

अजीगत आप क्या कहते हैं सत्यरक्षक महर्षि ?

विश्वामित्र तुम्ही कहो।

अजीगत इन लोगो के समक्ष मैं भेद खोलना नही चाहता था। किन्तु आपने मुझे विवश कर दिया। तथापि मुझे सकोच हो रहा है। महर्षि ! क्या आपको स्मरण नही कि वह शिशु आप तथा अनाथ राजा शबर की कुमारी पुत्री उग्रा के प्रेम का उपहार था, आपका उत्तराधिकारी था ! उस समय यदि यह रहस्य खुल जाता तो आयावर्त मे भरत तथा तत्सु आपका कोई चिह्न भी न रहने देते। इसी कारण मैंने आपके उस प्रथम पुत्र को भगवती लोपामुद्रा को नही सौपा तथा स्वय अभिशप्त होना तथा पतित होना स्वीकार किया। आपकी सुरक्षा का यही उपाय मेरी समझ मे उस समय आया था, महर्षि !

रोहिणी क्या यह सत्य कह रहा है, स्वामी ? (सिसकती है)

जमदग्नि नही नही, यह सत्य नही हो सकता।

रोहिणी आप कुछ बोलते क्यो नही स्वामी ?

विश्वामित्र (अवरुद्ध कण्ठ से) क्या सत्य है क्या असत्य, मैं कैसे कहू ! मैं कैसे यह विश्वास कर लू कि भगवती लोपामुद्रा ने असत्य भाषण किया था तथा यह नीच, पतित, अधम ब्रह्मराक्षस सत्य भाषण कर रहा है।

रोहिणी (रोती हुई) भगवती लोपामुद्रा ने क्या कहा था ?

विश्वामित्र भगवती लोपामुद्रा ने मुझे बताया था कि उग्रा एक मृत शिशु को जन्म देकर स्वय भी मृत्यु को प्राप्त हो गई थी। क्यो रे असत्यभाषी ? भगवती भी क्या असत्य भाषण कर सकती हैं ?

अजीगत मैं भगवती को असत्यभाषी कैसे कह सकता हूँ ? किन्तु मैंने असत्य भाषण नही किया। सम्भव है, उस समय आपकी सुरक्षा के लिए भगवती ने वैसा कहना ही उचित समझा हो। किन्तु इस समय मैं असत्य भाषण क्यो करूगा ?

जमदग्नि मामा जी से एक सहस्र गौएँ हस्तगत करने के लिए।

रोहिणी किन्तु मेरे स्वामी तथा अनार्या कुमारी उग्रा का सम्बन्ध क्या सत्य है?

अजीगत (हँसकर) इस सम्बन्ध को भी आप अस्वीकार कर दीजिए, महर्षि! आप इन वस्तुओं का अवलोकन तो कीजिए देवि!

विश्वामित्र क्या हैं ये?

जमदग्नि मैं देखूँ।

[अजीगत जेब से निकालकर एक मुद्रा और एक कुण्डल रोहिणी के हाथ में देता है।]

रोहिणी शबर की मुद्रा तथा कुंडल। क्या यह कुंडल आपका है, स्वामी?

अजीगत बोलिए, बोलिए, महर्षि! क्या आप इन वस्तुओं को नहीं पहचानते? ये शिशु के कण्ठ में बँधी थीं।

रोहिणी हे भगवान! हे भगवान! (जोर से रोती है)

जमदग्नि वरुण देव, वरुण देव, क्या यह रहस्य भी आपको आज ही उद्घाटित करना था।

विश्वामित्र (काँपते स्वर में) कहाँ है वह शिशु?

अजीगत (हँसकर) शिशु नहीं, अब वह शिशु बीस वर्ष का तरुण शुनःशेप है जिसे आप प्रातः यज्ञकुण्ड में होम करने का पुण्यकर्म करने वाले हैं!

रोहिणी नहीं नहीं! यह नहीं होगा!

जमदग्नि असम्भव! असम्भव!

विश्वामित्र (क्रुद्ध) नराधम! तेरे असत्य की कोई सीमा नहीं है! भगवान अगस्त्य ने तुझे इसी असत्य भाषण के लिए शाप दिया, अब मैं भी तेरे असत्य भाषण के लिए

अजीगत सावधान, महर्षि! आप भी क्रोध में आकर सामान्य ऋषियों तथा देवों की पंक्ति में खड़े न होइए! मुझे शाप देने के पूर्व आप भली भाँति विचार कर लें कि शुनःशेप आपका ज्येष्ठ पुत्र है, आपका उत्तराधिकारी है! आपकी मृत्यु के पश्चात् यह भरतों के राज्य का अधिकार माँगेगा। मैंने यों ही बीस वर्षों तक उसका पालन पोषण नहीं किया है। उसका मूल्य केवल एक सहस्र गौएँ तो कुछ नहीं! मैंने उसे यों ही यज्ञकुण्ड में होमने के लिए बड़ा नहीं किया है। वह तो दासी उग्रा का पुत्र है। उसकी बलि वरुण देव कैसे स्वीकार करेंगे?

रोहिणी हे भगवान ! हे भगवान ! यह सब मैं क्या सुन रही हूँ ?

जमदग्नि मामा जी ! क्या अब भी आप मुझे अनुमति नही देंगे कि मैं इस दुष्ट को यहा से भगा दू ?

विश्वामित्र राक्षस ! तू भाग यहा से !

अजीगत जा रहा हूँ। किन्तु आप विचार कर लीजिएगा, महर्षि प्रात यज्ञमण्डप मे हमारी फिर भेट होगी। (जाता है)

[करुण सगीत की एक धुन बजने के बाद]

रोहिणी (कुठित) स्वामी, आप इस प्रकार शात गम्भीर क्यों हो गए है ? अजीगत तो चला गया। पता नही अब वह क्या उत्पात करे ? प्रात भरे यज्ञमण्डप मे भी वह यही कथा सुनाने लग तो ?

विश्वामित्र (धीर गम्भीर) यज्ञमण्डप मे शुन शेप भी उपस्थित होगा न ?

जमदग्नि हाँ मुझे ज्ञात हुआ है कि शुन शेप महाराज के सैनिको के पहरे मे है।

विश्वामित्र तो शुन शेप का देखने के बाद ही मैं निणय कर पाऊँगा कि क्या सत्य है, क्या असत्य है, भगवती लोपामुद्रा न सत्य भाषण किया था अथवा अजीगत का भाषण सत्य है !

रोहिणी किन्तु यह सत्य तो आप स्वीकार करते हैं न स्वामी कि उग्रा के साथ आपका प्रेम-सम्बन्ध था तथा उग्रा न आपके पुत्र को जन्म दिया था ?

विश्वामित्र (विभोर) हा, यह सत्य है मैं इस अस्वीकार नही करता ! उग्रा के साथ मेरे जीवन का वह प्रथम प्रेम था। उग्रा को मैं आजीवन विस्मृत नही कर सकता। शबरगढ की श्यामा, सुन्दर सुकोमल, मेरे प्रेम मे विह्वल वह बालिका उग्रा आज भी मेरे नना म, हृदय मे बसी है। उसन एक दिन मुझस मेरा कुण्डल प्रेमचिह्न के रूप म माग लिया था। यह वही कुण्डल है। उसके वक्षस्थल पर एक मुद्रा का लाल चिह्न था। यह वही मुद्रा है। मैंने प्रेम-विह्वल होकर कितनी ही बार इस कुण्डल तथा मुद्राचिह्न का चुम्बन किया था। उग्रा के गभवती होन पर मैं उसस विवाह करने को उद्यत हो गया था किन्तु भगवान अगस्त्य तथा भगवती लोपामुद्रा न हमारा सम्बन्ध स्वीकार नही किया। भगवान अगस्त्य ने मेरा विवाह अपनी पुत्री अर्थात आपके साथ सम्पन्न करा दिया। इससे मुझे तथा उग्रा का बडा दुख हुआ। किन्तु हम विवश थे !

रोहिणी फिर क्या हुआ ?

विश्वामित्र एक अशुभ रात्रि मे उग्रा प्रसवपीडा से मूर्च्छित हो गई, फिर भगवती ने जो मुझे बताया, वह तुम लोगो को अभी-अभी मैं बता चुका हूँ। किन्तु अजीगत उनका प्रतिवाद कर गया है। इन दोनो मे किसकी बात सत्य है, यह शुन शेप को देखने से ही ज्ञात हो सकती है। यदि शुन शेप मेरा तथा उग्रा का पुत्र होगा, तो तुम लोग भी उसे पहचान सकते हो। हो सकता है कि उसके वक्ष-स्थल पर इस मुद्रा का चिह्न भी हो !

रोहिणी (सिसकती हुई) यदि शुन शेप सचमुच आपका पुत्र हुआ तो ?

जमदग्नि क्या आप उसकी बलि दे देंगे ?

विश्वामित्र नही, मैं उसकी बलि नही दूगा ! मैं नरबलि दे ही नही सकता हूँ शुन शेप मेरा पुत्र नही होगा, तब भी मैं उसकी बलि नही दूगा।

जमदग्नि यह क्या कहते हैं मामा जी ? आपने राजा हरिश्चन्द्र को वचन दिया है

विश्वामित्र मैंने जो वचन दिया है, उसे मैं पूरा करूँगा।

रोहिणी किन्तु कैसे ?

विश्वामित्र कल यज्ञमण्डप मे तुम लोग उपस्थित रहना। वरुण देव सोचते हैं कि मेरे हाथो नरमेध कराकर मुझे सत्यभ्रष्ट कर देंगे। वे यह नही सोचते कि सत्य सर्वोपरि है, मेरे भ्रष्ट होने से वह भ्रष्ट नही हो सकता ? फिर क्या वरुण देव मुझे सत्यभ्रष्ट कर सकते हैं ? मुझे सत्यभ्रष्ट करने के पूर्व ही वे देखेंगे कि अग्निकुंड मे शुन शेप के स्थान पर मेरा होम होगा। मैं अपना होम देकर सत्य तथा हरिश्चन्द्र की रक्षा करूँगा।

रोहिणी (चीखकर) स्वामी ! स्वामी ! यह क्या कह रहे हैं आप ?

जमदग्नि (चीखकर) मामा जी ! मामा जी ! क्या ऐसा भयकर सकल्प आपने कर रखा है ?

विश्वामित्र तुम लोग शात रहो ! वरुण देव वसिष्ठ मुनि तथा अजीगत राक्षस मेरा अपमान करने पर तुले हैं मेरे सारे प्रतिपादित सत्य को मिटाने के लिए कटिबद्ध हैं। वे कल्पना भी नही कर सकते कि विश्वामित्र राजपुरोहित, धन अथवा सुख ऐश्वर्य के लिए जीवित नही है ! उसका जीवन सत्य निष्ठा, कर्तव्य, मानवता के निमित्त समर्पित है। उसने धन, ऐश्वर्य अथवा प्रतिष्ठा के लिए सत्य-साधना नही की है ! वह तपस्वी है सत्य का ! सत्य

की रक्षा के लिए स्वत अपने प्राण दे सकता है, सत्य की वेदी पर अपनी बलि दे सकता है ! यज्ञज्वाला का आलिंगन कर सकता है ! तुम लोग साक्षी होना कि नरबलि के भूखे देव वरुण किस प्रकार मेरी बलि स्वीकार करते हैं ! यज्ञ सृजन का साधन है, मानव विनाश का कुड नही ! जिस यज्ञकुड मे मानव का होम हो, वह यज्ञ हो ही नही सकता ! मैं अपने सत्य पर अटल हूँ, सदा अटल रहूँगा !

जमदग्नि किन्तु वरुण देव तो रोहित के समवयस्क तरुण की बलि लेना चाहते हैं ?

विश्वामित्र तो उन्हे पिता-पुत्र दोनो की बलियाँ मिलेंगी !

रोहिणी आपका तात्पर्य ! किस पिता पुत्र की ?

विश्वामित्र मेरी तथा मेरे पुत्र शुन शेप की।

जमदग्नि तो क्या आपने स्वीकार कर लिया कि शुन शेप आपका ही पुत्र है ?

रोहिणी हे भगवान ! हे भगवान ! शुन शेप आपका पुत्र है, यह आप यज्ञमण्डप मे सब लोगो के समक्ष स्वीकार करेंगे ?

विश्वामित्र यदि मुझे विश्वास हो गया कि शुन शेप ही मेरा पुत्र है, तो मैं डके की चोट पर यह घोषणा करूँगा।

रोहिणी (रोती है) फिर आप यह भी घोषणा करेंगे कि शुन शेप ही आपका उत्तराधिकारी है। हे भगवान ! मेरे देवदत्त का क्या होगा ?

जमदग्नि ओ हो ! सभावनाएँ सत्य ही नही हुआ करती, मामी जी ! मेघगर्जन से आप भयाक्रान्त हो रही हैं कि विद्युत प्रहार आप ही पर होगा ! मामा जी तो कह रहे हैं कि यदि

रोहिणी नही, जमदग्नि, नही ! मुझे लगता है कि अजीगर्त सत्य भाषण कर गया है

विश्वामित्र सम्भव है। किन्तु वह मुझे जो भय दिखा गया है, वह असत्य है ! मैं सत्य को ढाकने के लिए उसे एक सहस्र गौएँ घूस नही दूंगा ! प्रत्युत सत्य की घोषणा स्वय कर उसके मुख पर कालिख पोत दूगा।

रोहिणी मुझे तो अपने देवदत्त के लिए चिन्ता हो गई ! क्या उसे उत्तराधिकार से वचित कर शुन शेप को

जमदग्नि ओ हो मामी जी

विश्वामित्र देवि की आशका निर्मूल नही है जमदग्नि ! परिपाटी तो यही

है कि ज्येष्ठ पुत्र को ही उत्तराधिकार मिलता है। शुन शेप यदि मेरा ही पुत्र हुआ तो ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते वही मेरा उत्तराधिकारी होगा। किन्तु

जमदग्नि यह नहीं हो सकता, मामा जी! भरत लोग एक दासीपुत्र को अपना राजा नहीं मानेंगे!

रोहिणी हाय-हाय! य

विश्वामित्र मेरी पूरी बात तो तुम लोग सुनो! शुन शेप दासीपुत्र है, इसी कारण क्या मैं उसे उसके अधिकारों से वंचित कर दूंगा? नहीं नहीं, विश्वामित्र यह नहीं कर सकते! किन्तु भरत लोगों का पूरा अधिकार है कि वे जिसे चाहें अपना राजा बनाएँ भरतों का राजा कोई मेरी निजी सम्पत्ति तो नहीं है कि उसका उत्तराधिकार मैं जिसे चाहूँ, दूँ! तत्सु मुझे अपदस्थ कर वसिष्ठ मुनि को अपना राजपुरोहित बनाने जा रहे हैं, तो क्या मैं कहूंगा कि नहीं, ऐसा करने का तुम लोगों को कोई अधिकार नहीं है? नहीं नहीं विश्वामित्र यह नहीं मानता कि उसका कोई जन्मजात अधिकार है। उसे जो कुछ प्राप्त हुआ है उसके कर्म से प्राप्त हुआ है, वह सब चला जाए, तो भी उसके द्वारा प्रतिपादित सत्य का पालन करेगा। वह किसी से कोई अधिकार नहीं मांगेगा, आप लोग निश्चित रहिए!

[नेपथ्य से घंटा बजने की आवाज़ आकर फेड आउट होती है। फिर भीड़ के शोर की आवाज़ आती है। मंच पर अंधकार छा जाता है। फिर प्रकाश होता है, तो मंच पर यज्ञमंडप का दृश्य दिखाई देता है। चारों ओर ऋषि मुनि बैठे हैं जिनमें विश्वामित्र, जमदग्नि और सावित्री भी हैं।]

रोहित (आकर) महर्षि! यज्ञ की सम्पूर्ण सामग्री आ गई। आप देखकर बताएँ, कोई वस्तु छूट तो नहीं गई है।

जमदग्नि हमने सहेज ली है। कोई वस्तु कम नहीं है। अब तुम महाराज को स्नान कराकर नवीन वस्त्र धारण कराकर ले आओ।

रोहित पिता जी की दशा अति गम्भीर है। वे चेतनाहीन होकर पड़े हैं। उन्हें कैसे स्नान कराया जाए कैसे यहाँ ले आया जाए?

जमदग्नि शैय्या पर ही स्नान कराओ तथा शैय्या पर ही उन्हें यहाँ ले

आओ। तुम भय न करो उन्हें कुछ नही होगा। यज्ञमण्डप मे उनकी तथा महारानी की उपस्थिति आवश्यक है।

रोहित क्या आप मेरी सहायता करने की कृपा करेंगे ? मेरा तो साहस टूट रहा है। माता जी भी विक्षिप्त सी हो रही हैं। दास तो स्नान नही करा सकते न ?

जमदग्नि नही ! मामा जी, मैं जाऊँ ?

विश्वामित्र जाओ, सावधानी से महाराज का स्पर्श करना। अधिक विलब नही होना चाहिए ! (जमदग्नि और रोहित जाते हैं)

दूत (आकर) महर्षि, सेनापति पूछ रहे हैं कि क्या वे शुन शेप को ले आने के लिए सैनिको को आज्ञा दें।

विश्वामित्र हा। उनसे कहो कि व शुन शेप के साथ ही अजीगत को भी ले आएँ। (दूत जाता है)

रोहिणी स्वामी ! तब तक आप वरुण देव का आह्वान कर उनसे एक बार प्रार्थना क्यो नही करते कि वे नरबलि के लिए हठ न करें ?

विश्वामित्र आप अधीर न हो, देवि ! पहले मैं शुन शेप को देख लू, फिर कुछ करूँगा। आप भी उसे ध्यान से देखिएगा। मैं तो भगवान से प्रार्थना कर रहा हूँ कि शुन शेप मेरा ही पुत्र हो !

रोहिणी किन्तु मैं तो प्रार्थना कर रही हूँ कि वह आपका पुत्र न हो, न हो !

विश्वामित्र नही होगा, तब भी मेरी योजना तथा सकल्प म कोई अन्तर न पड़ेगा। नरबलि नही होगी। चाहे मुझे अपनी ही बलि देनी पड़े।

रोहिणी हे प्रभु। क्या होने को है ?

[नेपथ्य से भीड का शोर तेज होता है। शोर के ऊपर आवाजें आती हैं यही वह राक्षस पिता है जिसने अपने ऐसे सुशील पुत्र का बलि के लिए विक्रय किया है ! हाय ! हाय !

[हाय कैसा सुन्दर सुशील, निरीह तथा प्रतिभावान तरुण है यह तो इस चाडाल का नही किसी ऋषि का पुत्र ज्ञात होता है।]

दूत (आकर) शुन शेप आ गया, महर्षि !

[शुन शेप को सैनिक अपने घेरे म लेकर आते हैं।]

विश्वामित्र उस स्तभो के मध्य खड़ा करो। ब्राह्मणो ! तुम लोग तरुण को दुग्ध, घृत, मधु तथा जल से स्नान कराकर नवीन कौपीन तथा यज्ञोपवीत धारण कराओ !

रोहिणी (चकित) ओह, यह शुन शेप है अथवा मेरा दवदत्त। इतनी एक-रूपता स्वामी, मरे दवदत्त तथा इस तरुण मे तो कोई भेद नही लगता। स्वामी, स्वामी, देखिए, यह कितना प्रसन्न है। वह आप ही की ओर एकटक देख रहा है।

विश्वामित्र (गम्भीर) शात रहो, देवि। ब्राह्मण तरुण के वस्त्र उतार रहे हैं। आप ध्यान से तरुण के वक्ष स्थल पर दृष्टि डालिए। मुझ तो लगता है, भगवान ने मेरी प्रायना सुन ली। यह मेरा तथा उग्रा का ही पुत्र है।

जमदग्नि (आकर) महाराज को लाया जा रहा है मामा जी, मुझे तो लगता है कि उनके प्राण कण्ठ म आ गए हैं। अब आप एक क्षण भी विलब न करें।

विश्वामित्र स्तभा के मध्य शुन शेप का स्नान कराया जा रहा है। जमदग्नि तुम भी उसे ध्यान से देखो।

जमदग्नि हे भगवान ! मामा जी, यह तो देवदत्त का ही प्रतिरूप लगता है।

विश्वामित्र देवि भी यही बात कह रही थी। वह मेरा पुत्र है, वत्स ! तुम ध्यान से उसका वक्ष स्थल तो देखो। कुछ लाल-लाल दिखाई दे रहा है क्या ?

रोहिणी हाँ स्वामी, काई लाल चिह्न अवश्य है। स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

जमदग्नि हाँ, हाँ, मामा जी, है, लाल चिह्न है।

विश्वामित्र अब मेरा काय सरल हो गया।

[नपथ्य म शोर तेज होता है। उसके ऊपर भीड का नारा गूजता है महाराज हरिश्चन्द्र की जय ! सत्यवादी हरिश्चन्द्र की जय ! महा[illegible] [illegible]वी हा [illegible] शतायु हो !]

जमदग्नि मामा जी ! अब आप शी[illegible] देव[illegible] कीजिए !

[शोर तेज होना है औ

[illegible], वह [illegible]

जमदग्नि — उसे रोको, रोको !

विश्वामित्र — नहीं-नहीं, उसे आने दो।

शुन शेप — (विश्वामित्र के सामने आकर, हाथ जोड़कर) आप महर्षि विश्वामित्र हैं न ? बलि से पूर्व आप मुझे चरण स्पर्श की अनुमति देने की कृपा करें महाराज ! आपके दर्शन से मेरी आत्मा तृप्त हुई। आज मैं कृतार्थ हो गया।

विश्वामित्र — (गदगद) चिरंजीवी होओ वत्स !

[नेपथ्य में शोर उभरता है। ऊपर से भीड़ की आवाज़ आती है महर्षि ने बलि तरुण को यह कैसा आशीर्वाद दिया है ? अब तो वह कुछ क्षणों का ही अतिथि है।]

शुन शेप — आप तपस्विनी रोहिणी माता हैं न !

रोहित — (चीखता है) महर्षि ! महर्षि ! पिताजी

विश्वामित्र — जाओ, जमदग्नि, महाराज को संभालो। शुन शेप, तुम अपने स्थान पर जाओ। वरुण देव तुम पर कृपा करेंगे।

शुन शेप — वे मुझे अपने साथ देवलोक ले जाएँगे न महर्षि ?

सूत — शुन शेप चलो।

विश्वामित्र — अब मुझे कोई संदेह नहीं हो रहा है, देवि। शुन शेप मेरा ही पुत्र है।

[हरिश्चन्द्र को शैय्या पर लाकर कुण्ड के समीप रखा जाता है। रोहिणी शैय्या के पास बैठ जाती हैं।]

(आह्वान करते हुए) हे वरुण देव ! हे वरुण देव ! इस यज्ञ मण्डप में पधारने की कृपा करें। हे वरुण देव ! आप अपनी बलि प्राप्त करने के लिए पधारें !

रोहिणी — आश्चर्य है, शुन शेप की प्रसन्नता की तो कोई सीमा ही ज्ञात नहीं होती। वह अब भी एकाग्र केवल आपको देख रहा है स्वामी !

विश्वामित्र — नहीं, देवि, अब वह आकाश मार्ग की ओर देख रहा है। वह वरुण देव के पधारने की प्रतीक्षा कर रहा है।

रोहिणी — वह देखिए ! वरुण देव श्वेत अश्व पर पधार रहे हैं।

[नेपथ्य में शोर उभरता है और उसके ऊपर आवाज़ें आती हैं, वरुण देव आ गए ! वरुण देव आ गए !]

विश्वामित्र — विराजिए, वरुण देव !

वरुण — महर्षि विश्वामित्र! मुझे नरबलि देने का अनुष्ठान कराना आपने स्वीकार किया। इसके हित में आपका कृतज्ञ हूँ।

रोहिणी — वरुण देव! वरुण देव! मेरे स्वामी पर कृपा कीजिए।

वरुण — (हँसकर) इस समय मैं किसी पर कृपा करने नहीं, अपनी बलि लेने आया हूँ। मुझे ज्ञात था कि केवल विश्वामित्र ही सकटग्रस्त राजा हरिश्चन्द्र की सहायता करेंगे।

जमदग्नि — आप महाराज पर अब तो कृपा करें, वरुण देव! आपकी बलि प्रस्तुत है।

विश्वामित्र — अजीगत, बाधो बलि का स्तम्भ से!

शुन शेप — वरुण देव! वरुण देव! आपके दर्शन कर मैं धन्य हुआ। आप मुझे अपने साथ ले चलें। मैं प्रस्तुत हूँ!

वरुण — महर्षि आप यज्ञ प्रारंभ करें!

विश्वामित्र — आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, वरुण देव किन्तु क्षमा करें, मुझसे एक त्रुटि हो गई।

वरुण — आपसे त्रुटि? नहीं, यह सभव नहीं।

विश्वामित्र — मैं देव नही, मात्र मानव हूँ, वरुण देव! मानव से चूक हो ही जाती है।

वरुण — आप कोई सामान्य मानव नही महर्षि! आपने महान सत्य की साधना की है।

विश्वामित्र — आप मुझसे परिहास कर रहे हैं वरुण देव! आज मेरी सम्पूर्ण साधना विनष्ट होने जा रही है आप अपनी बलि लीजिए तथा महाराज पर कृपा कीजिए। किन्तु इसके पूर्व आप हमारी त्रुटि जान लीजिए तथा क्षमा

वरुण — कहिए?

विश्वामित्र — अभी इस यज्ञमण्डप मे मुझे ज्ञात हुआ है कि बलि तरुण एक दासीपुत्र है।

वरुण — दासीपुत्र?

[नेपथ्य मे भीड का शोर उभरता है। शोर के ऊपर आवाजें गूंजती हैं दासी-पुत्र! दासी-पुत्र!]

विश्वामित्र — क्षमा करें वरुण देव! इस तरुण के विक्रेता अजीगत ने महाराज से छल किया है। इसने तरुण को अपना पुत्र बताया था किन्तु यह उसका पुत्र नहीं है, यह अभी ज्ञात हुआ है।

वरुण — फिर किसका पुत्र है?

विश्वामित्र यह मेरा पुत्र है, वरुण देव, शबर पुत्री दासी उग्रा से ज मा !

[शोर उभरता है और आवाजें गूजती है। एक क्या ? क्या ? यह महर्षि विश्वामित्र का पुत्र है !]

आप इसकी बलि स्वीकार करेंगे, वरुण देव ? अनुमति दीजिए ता

शुन शेप (चीखता है) पिताजी ! पिताजी, आप मेरे ज मदाता हैं ?

वरुण नही नही, मैं दासीपुत्र की बलि कैसे स्वीकार कर सकता हूँ ?

विश्वामित्र तब तो आपकी तृप्ति का एक ही माग रह गया है

वरुण वो क्या ?

[नपथ्य म शोर उभरता है तथा आवाजें गूजती है। कई स्वर महर्षि अपनी बलि द रहे हैं ! महर्षि अपनी स्वय की बलि दे रहे हैं ! ध य हैं ! ध य हैं महर्षि !]

विश्वामित्र एक तपस्वी को स्वत अपनी बलि देने का अधिकार है। मैं उसी अधिकार का प्रयाग कर

रोहित (चीखता है) वरुण देव ! वरुण देव ! महाराज का श्वास रुद्ध हो रहा है।

रोहिणी (चीखती है) वरुण देव। वरुण देव। स्वामी !

वरुण आप अपनी बलि द देंगे, तो आपके सत्य का क्या होगा ? (अटटहास)

विश्वामित्र मेरा सत्य अब विश्व मानव का सत्य हो गया है ! मेरी बलि से उसकी रक्षा होगी, उसका प्रकाश उज्ज्वलतर होगा। मैं ध य हूँगा।

[नेपथ्य मे शोर उभरता है और ये आवाजे गूजती हैं ध य है महर्षि ! ध य हैं महर्षि ! अरे ! यह तरुण तो अपने बधन तोड रहा है। उसने बधन तोड लिये ! अरे !]

उसे मुक्त कर दो सैनिको ! अजीगत, खडग मुझे दो। वरुण देव आप बलि लीजिए !

रोहिणी हे वरुण देव। हे वरुण दव !

शुन शेप हे पिताजी ! हे पिता जी ! मुझे अपन चरणा म स्थान दीजिए !

विश्वामित्र आओ, पुत्र आओ ! मेरी उग्रा के हृदय-अश आओ ! मेरे हृदय से लग जाओ ! रोहिणी, मुझे विदा दो ! जमदग्नि मुझे

विदा दो नागरिको, मुझे विदा दो सभी मेरा प्रणाम स्वीकार करो।

[वरुण जाता है।]

जमदग्नि मामाजी ! मामाजी ! महाराज के प्राण लौटकर आ रहे हैं। यह देखिए। इनके नेत्र खुल रहे हैं।

रोहित पिता जी शापमुक्त हो गए !

विश्वामित्र वरुण देव ! वरुण देव ! आप कहाँ हैं ?

वरुण (नेपथ्य मे वरुण की गूंजती आवाज आती है) महर्षि विश्वामित्र ! आप खड्ग फेंक दीजिए। आपके महात्याग, महा-निर्भयता के समक्ष मैं शीश झुकाता हूँ।

[नेपथ्य मे भीड का शोर उभरता है और आवाजें गूंजती हैं। उल्लास की संगीत धुन बजती है। कई स्वर महर्षि विश्वामित्र की जय ! महर्षि विश्वामित्र की जय ! धीरे-धीरे गूंजें तिरोहित होती हैं और पर्दा गिरता है]

अन्धकार



डॉ० रामकुमार वर्मा

सूचना

इस नाटक में रंगमंच की व्यवस्था इस भाँति हो कि उसमें स्वर्ग के वातावरण का आभास स्पष्टतया दिखाई दे। दिव्य प्रकाश के लिए नीले और हरे रंग की रोशनी अपेक्षित होगी, इन्द्रधनुष के छोटे छोटे टुकड़ों का आभास उत्पन्न करने के लिए परदों पर रंगीन स्लाइड का बिंब फेंका जा सकता है। वातायन के पीछे आकाश-गंगा का आभास, वस्त्र के पीछे बिजली के प्रकाश की व्यवस्था से हो सकता है। नीलम और मूंगे के आसन के लिए क्रमशः नील और लाल वस्त्र से काम चल सकता है।

अभिनय के लिए प्रतिन्यास में आई हुई काव्य की कल्पनाएँ छोड़ी जा सकती हैं।

पात्र-परिचय

प्रजापति	सृष्टि के रचयिता
विद्याधर	प्रजापति का सहायक
मेनका	स्वर्ग की अप्सरा
माया	प्रजापति की शक्ति
अश्विनीकुमार	उर्वशी के प्रेमी और देवताओं के वैद्य
कश्यप	सर्पिणियों के नेता
	किन्नरियाँ

[स्वर्ग का एक कक्ष। दिव्य प्रकाश। समस्त वातावरण जैसे चन्द्रकिरणों से निर्मित है। चारों ओर एक कोमल उज्ज्वलता छाई हुई है। कक्ष का रूप इन्द्रधनुष के छोटे छोटे टुकड़ों से बना हुआ है। सामने दो वातायन मयूर के फैले हुए पुच्छाकार के ढंग के हैं। उनसे आकाश-गंगा की धवल राशि ज्ञान कोरकों की भांति बन दीख रही है। स्फटिकमणि के बने हुए दो दो हंस वातायनों के दोनों ओर सजे हुए हैं, जिनकी अरुण चंचु में मानसरोवर से लाये हुए अरुण कमल हैं—उन पर ओस की भांति मोतियों के दाने हैं। देव शिल्पी विश्वकर्मा ने इस कक्ष के बीचोबीच एक सिंहासन बनाया है जिसमें नीलम का फर्श और मूंगे का आसन है। वह सिंहासन आरती पात्र की भांति बना हुआ है। इन्द्रनील मणि का गुम्बज और हीरकों के स्तम्भ। सिंहासन भव्य है जैसे सौन्दर्य और अनुराग घनीभूत हो गया है। समीप ही दो तीन छोटी पीठिकाएँ हैं।

एक वातायन खुला हुआ, जिससे वायु गति दीख रही है। दूसरे वातायन पर किरणों का धवल वस्त्र है, जो भैरव राग की भांति मंदगति से टहल रहा है। सम्भवतः इन्द्र की पुरी देवधानी में विहार करती हुई देवांगनाओं के केशों से गिरे हुए तरुण कमलों की गंध से उठी हुई समीरण इस ओर प्रवाहित होकर वातायन वस्त्र को गतिशील कर रही है। कक्ष के कोने से अगर की गंध वाला श्वेत धूम्र धीरे धीरे उठ रहा है। उसके साथ कक्ष में सूक्ष्म उल्लास फैल रहा है। तुलसी की मंजरी के साथ मंदार, उत्पल, कुंद और पारिजात की पुष्प मालाएँ स्थान स्थान पर सजी हुई हैं। उनके साथ ही मोतियों की मालाएँ हैं, जिनसे कांति-जल टपक रहा है। कोने में ध्वजा और पताका।

सिंहासन पर प्रथम प्रजापति मरीचि बैठे हुए हैं। तेज से परिपूर्ण, अत्यन्त सूक्ष्म और श्वेत परिधान हैं जैसे किसी शैल शृंग को स्थान-स्थान पर हिम राशि ने आच्छादित कर लिया है। वे पुण्य की गरिमा में आसीन हैं। माथे

आलोक-प्रदेश के बीच एक विशाल पर्वत है लोकालोक। तीनों लोकों की सीमा उसी पर्वत से बांधी गई है। लोकालोक पर्वत के ऊँचे उठने से ही भू भाग के दूसरी ओर अंधकार है! अंधकार!! भयानक पाप, भीषण दुराचार (पुकारकर) विद्याधर!]

[विद्याधर का प्रवेश। लम्बे गौरवपूर्ण केश कलाप, अंगराग और पीत पट वस्त्र। केश कुंचित और पुष्पों से सुसज्जित। आकर प्रणाम करता है।]

प्रजापति विद्याधर, एक भूभाग में प्रकाश है, दूसरे में अंधकार।

विद्याधर किस प्रकार, प्रभु!

प्रजापति लोकालोक पर्वत के अधिक ऊंचे होने के कारण सूर्य आदि नक्षत्रों की किरण केवल ध्रुवलोक तक ही पहुँचती हैं। केवल अंधकार, महा अंधकार!

विद्याधर सत्य है प्रभु!

प्रजापति और विद्याधर, जानते हो यह अंधकार क्या है?

विद्याधर क्या है प्रजापति?

प्रजापति (हँसकर) कोई नहीं जानता। केवल मैं जानता हूँ और मेरे आठ भाई प्रजापति! इनके अतिरिक्त यह रहस्य कोई नहीं जानता।

विद्याधर क्या रहस्य है प्रभु?

प्रजापति तुम जानना चाहते हो, विद्याधर! गायकों के लिए रहस्य की बातें नहीं होतीं। वे रहस्य का गीत बनाकर गा देंगे!

विद्याधर किन्तु प्रभु, अब मैं गायक विद्याधर नहीं, अब तो विश्वात्मा की आज्ञा से प्रभु की सेवा में नियोजित हो गया हूं। आपकी सेवा में।

प्रजापति (नील-कमल को सामने करते हुए) यह नील कमल विश्वात्मा को समर्पित होकर भी नील कमल रहेगा। उसी तरह तुम भी अपना स्वभाव तो नहीं छोड़ सकते। अवसर आने पर विद्याधर केवल गायक विद्याधर हो सकता है।

विद्याधर प्रभु ऐसा नहीं हो सकेगा।

प्रजापति विद्याधर, जल को यदि मैं हिम बना दूं, तो क्या वह जल नहीं रहेगा? थोड़ी आँच पाते ही वही हिम फिर जल बनकर बहने

लगेगा। तुम भी बहने लगोगे विद्याधर ! तुम इन्द्र के सेवक हो। मायावी का सेवक क्या मायावी नहीं होगा ?

विद्याधर प्रभु, मैं अपना स्वभाव भूल गया हूँ। कहाँ मैं प्रेम की उपासना में लीन विद्याधर सोमरस के पान में अपने जीवन की तरलता समझता था, आज प्रभु के साधना-कक्ष में आकर तपस्वी हो गया हूँ। गायन के स्थान पर मन्त्रोच्चारण करता हूँ। सोमरस के स्थान पर प्रभु की मुख-श्री की शोभा का पान करता हूँ।

प्रजापति उन्नति करो विद्याधर, यही विश्वात्मा की इच्छा है।

विद्याधर प्रभु, आपके पथ प्रदर्शन में उन्नति ही करूँगा। गायक अब साधक बन गया है, प्रेम अब उपासना बन गया है। मैं मधुरालाप के स्थान पर रहस्य सुनने का अधिकारी बन गया हूँ। प्रभु की सेवा में रहते हुए निर्माण-कार्य में सहायता पहुँचाते हुए, मैं तो आपके सभी परामर्शों का पात्र बन गया हूँ, प्रभु !

प्रजापति ठीक है विद्याधर, तुम प्रियवद हो, कामरूप हो, इच्छानुसार रूप धारण कर सकते हो। किन्तु अंधकार का रहस्य बहुत बड़ी मर्यादा का रहस्य है !

विद्याधर प्रभु, आप मेरी उत्सुकता बढ़ा रहे हैं। मैं सुनने के योग्य हूँ।

प्रजापति अच्छा, मैं तुम्हें सुनाऊँगा। तुम विदुष् हो—यह ज्ञान भी प्राप्त करो। किन्तु वह अत्यन्त विश्वस्त और गोपनीय है।

विद्याधर प्रभु, मेरे समीप आकर वह और भी गोप्य और विश्वस्त बन जायेगा।

प्रजापति अच्छा, अब तुम्हें सुनाऊँगा। देखो, यहाँ कोई है तो नहीं ?

[विद्याधर द्वार तक जाकर लौटता है]

विद्याधर कोई नहीं, प्रभु !

प्रजापति तब सुनो। वायु को प्रथम बार इन शब्दों का भार वहन करने का अवसर आ रहा है। यह रहस्य एकाकीपन से निकलकर आज वायुमण्डल का स्पर्श करेगा।

विद्याधर सत्य है प्रभु !

प्रजापति (कुछ निकट आकर) सुनो, मेरे पिता विश्वगुरु ब्रह्मा हैं। हम नव पुत्रों के अतिरिक्त उनके एक कन्या भी हुई। अत्यन्त सुन्दर कन्या ! उसका नाम जानते हो ? स र स्व ती । मेरी बहन सरस्वती के शरीर से रूप चन्द्रकला की भाँति आकाश के रोम-रोम में स्वर्ग की सृष्टि करता था। महात्मा ब्रह्मा सरस्वती

आलोक-प्रदेश के बीच एक विशाल पर्वत है लोकालोक ! तीनों लोकों की सीमा उसी पर्वत से बाँधी गई है। लोका लोक पर्वत के ऊँचे उठने से ही भू भाग के दूसरी ओर अंधकार है ! अंधकार !! भयानक पाप, भीषण दुराचार (पुकारकर) विद्याधर !]

[विद्याधर का प्रवेश। लम्बे गौरवपूर्ण केश कलाप, अंग राग और पीत पट-वस्त्र। केश कुंचित और पुष्पों से सुसज्जित। आकर प्रणाम करता है।]

प्रजापति विद्याधर, एक भूभाग में प्रकाश है, दूसरे में अंधकार।
विद्याधर किस प्रकार, प्रभु !
प्रजापति लोकालोक पर्वत के अधिक ऊँचे होने के कारण सूर्य आदि नक्षत्रों की किरणें केवल ध्रुवलोक तक ही पहुँचती हैं। केवल अंधकार, महांधकार !
विद्याधर सत्य है प्रभु !
प्रजापति और विद्याधर, जानते हो यह अंधकार क्या है ?
विद्याधर क्या है प्रजापति ?
प्रजापति (हँसकर) कोई नहीं जानता। केवल मैं जानता हूँ और मेरे आठ भाई प्रजापति ! इनके अतिरिक्त यह रहस्य कोई नहीं जानता।
विद्याधर क्या रहस्य है प्रभु ?
प्रजापति तुम जानना चाहते हो, विद्याधर ! गायकों के लिए रहस्य की बातें नहीं होतीं। वे रहस्य का गीत बनाकर गा देंगे !
विद्याधर किन्तु प्रभु अब मैं गायक विद्याधर नहीं, अब तो विश्वात्मा की आज्ञा से प्रभु की सेवा में नियोजित हो गया हूँ। आपकी सेवा में।
प्रजापति (नील-कमल को सामने करते हुए) यह नील कमल विश्वात्मा को समर्पित होकर भी नील कमल रहेगा। उसी तरह तुम भी अपना स्वभाव तो नहीं छोड़ सकते। अवसर आने पर विद्याधर केवल गायक विद्याधर हो सकता है।
विद्याधर प्रभु ऐसा नहीं हो सकेगा।
प्रजापति विद्याधर, जल को यदि मैं हिम बना दूँ, तो क्या वह जल नहीं रहेगा ? थोड़ी आँच पाते ही वही हिम फिर जल बनकर बहे

लगेगा। तुम भी बहने लगोगे विद्याधर ! तुम इन्द्र के सेवक हो। मायावी का सेवक क्या मायावी नहीं होगा ?

विद्याधर प्रभु, मैं अपना स्वभाव भूल गया हूँ। कहाँ मैं प्रेम की उपासना में लीन विद्याधर सोमरस के पान में अपने जीवन की तरलता समझता था, आज प्रभु के साधना-कक्ष में आकर तपस्वी हो गया हूँ। गायन के स्थान पर मन्त्रोच्चारण करता हूँ। सोमरस के स्थान पर प्रभु की मुख-श्री की शोभा का पान करता हूँ।

प्रजापति उन्नति करो विद्याधर, यही विश्वात्मा की इच्छा है।

विद्याधर प्रभु, आपके पथ प्रदर्शन में उन्नति ही करूँगा। गायक अब साधक बन गया है प्रेम अब उपासना बन गया है। मैं मधुरालाप के स्थान पर रहस्य सुनने का अधिकारी बन गया हूँ। प्रभु की सेवा में रहते हुए निर्माण-कार्य में सहायता पहुँचाते हुए, मैं तो आपके सभी परामर्शों का पात्र बन गया हूँ, प्रभु !

प्रजापति ठीक है विद्याधर, तुम प्रियवद हो, कामरूप हो, इच्छानुसार रूप धारण कर सकते हो। किन्तु अन्धकार का रहस्य बहुत बड़ी मर्यादा का रहस्य है।

विद्याधर प्रभु, आप मेरी उत्सुकता बढ़ा रहे हैं। मैं सुनने के योग्य हूँ।

प्रजापति अच्छा, मैं तुम्हें सुनाऊँगा। तुम विदुप हो—यह ज्ञान भी प्राप्त करो। किन्तु वह अत्यन्त विश्वस्त और गोपनीय है।

विद्याधर प्रभु, मेरे समीप आकर वह और भी गोप्य और विश्वस्त बन जायेगा।

प्रजापति अच्छा, अब तुम्हें सुनाऊँगा। देखो, यहाँ कोई है तो नहीं ?

[विद्याधर द्वार तक झाँककर लौटता है]

विद्याधर कोई नहीं, प्रभु !

प्रजापति तब सुनो। वायु को प्रथम बार इन शब्दों का भार वहन करने का अवसर आ रहा है। यह रहस्य एकाकीपन से निकलकर आज वायुमण्डल का स्पर्श करेगा।

विद्याधर सत्य है प्रभु !

प्रजापति (कुछ निकट आकर) सुनो, मेरे पिता विश्वगुरु ब्रह्मा हैं। दस पुत्रों के अतिरिक्त उनके एक कन्या भी हुई। अत्यन्त सुन्दर कन्या ! उसका नाम जानते हो ? स र स्व ती। मेरी बहन सरस्वती के शरीर से रूप चन्द्रमा की भाँति आकाश के रोम रोम में रूप की सृष्टि करता था। महात्मा ब्रह्मा सरस्वती

के पिता होकर भी उसके रूप की—अपनी कन्या के रूप की अवहेलना नहीं कर सके। वे उसे काम भाव से चाहने लगे, विद्याधर! ओ हृदय जल रहा है—विश्व में आग लग जायेगी! (नील कमल हाथ से फेंक देते हैं)

विद्याधर प्रभु, शांत हो। अशांति के व्यूह से स्वतन्त्र हो, प्रभु!

प्रजापति विद्याधर! पिता को इस अधम पथ पर जाते देखकर हम लोगों ने प्रार्थना की—'विश्वगुरु यह कलंक पथ है। उस पर अपने पवित्र हृदय को गतिशील कर आप भविष्य की सृष्टि को दूषित न कीजिए। हंस के वाहन पर आपका कलुष शरीर पुण्य पर पाप की तरह ज्ञात होगा।' विद्याधर, पिताजी लज्जित हुए और उन्होंने उस कामुक शरीर का परित्याग किया। वही परित्याग किया हुआ कलुष शरीर अंधकार है विद्याधर, वही कलंक शरीर अंधकार है। यह मेरे पिता के दुराचरण की कथा है। पुत्र मरीचि को पिता के कलंक को मिटाना है। मैं इस अंधकार का नाश करना चाहता हूँ।

विद्याधर आप धन्य हैं प्रभु! पिता के महान् पुत्र! किन्तु आप अंधकार का नाश किस प्रकार कर सकेंगे?

प्रजापति (कुछ रुककर) सोच रहा हूँ किस प्रकार करूँ! स्वर्ग और पृथ्वी का मध्य भाग ब्रह्माण्ड कहलाता है। तुम भी वहाँ रहते हो और वहीं सूर्य की स्थिति भी है। तुम जानते होगे कि सूर्य इसीलिए तो मार्तण्ड कहलाता है कि वह अंधकारमय मृत ब्रह्मांड में विराट रूप से प्रविष्ट होता है और हिरण्मय अंड में प्रकट होने के कारण उसका नाम हिरण्यगर्भ भी है। मैं चाहता हूँ कि संपूर्ण सृष्टि इस प्रकार पुनर्निर्मित करूँ कि समस्त अस्तित्व एक हिरण्यमय अंड हो और उसमें मार्तण्ड की स्थिति गतिशील न होकर स्थिर रहे, जिससे अंधकार का अस्तित्व ही न हो।

विद्याधर किन्तु प्रभु आप प्रजापति होकर भी मार्तण्ड को नहीं रोक सकते। सृष्टि का नियम ही गतिशीलता है। आपमें भी गतिशीलता है। आप स्वयं गतिशील होकर सूर्य की गति कैसे रोक सकते हैं?

प्रजापति मैं यदि एक गतिशील धूमकेतु होकर सूर्य से टकरा जाऊँ तो?

विद्याधर प्रभु, सूर्य नष्ट हो जायगा और अंधकार ही अंधकार चारों ओर व्याप्त हो जायेगा। उससे तो आपका उद्देश्य अपूर्ण ही न रहेगा वरन् उसका बीज ही नष्ट हो जायेगा।

प्रजापति (हँसकर) तुम अन्ततः एक गायक हो विद्याधर। तुम्हारा संगीत

नक्षत्रों में भले ही भर गया हो किन्तु नक्षत्रों की बात तुम्हारे संगीत में प्रवेश नहीं कर सकी। अरे, जो धूम्रकेतु वेग से गतिशील होकर सूर्य के मार्ग का अवरोध करेगा, वह सूर्य से सहस्र गुना प्रकाशमान होगा और सूर्य गति में रुक न सका तो वह स्वयं शून्य में सहस्रों सूर्य बनकर कण कण को प्रकाशित करेगा और तब धूम्रकेतु अपने ही केन्द्र पर घूमता हुआ स्थिर होगा।

विद्याधर किन्तु प्रभु स्थिरता में अन्त है।

प्रजापति मुझे चिन्ता नहीं है। विद्याधर यदि मैं स्थिर रहकर नष्ट हो जाऊँ तो मुझे भय नहीं है। पिता की कलंक कालिमा तो दूर कर सकूँगा।

विद्याधर किन्तु प्रभु अपने पिता विश्वगुरु की कलंक-कालिमा रहने दीजिए न। वह आगामी सृष्टि के लिए व्यापक प्रमाण बनकर संसार में दुराचरण को रोकेगी।

प्रजापति (सोचकर)—तुम ठीक कहते हो विद्याधर, किन्तु इस दुराचरण को रोकने के लिए बुद्धि की आवश्यकता होगी। मुझे बुद्धि का केन्द्र भी उत्पन्न करना होगा। (फिर कुछ सोचते हैं और वातायन की ओर बढ़ते हैं)

विद्याधर आप क्या सोच रहे हैं?

प्रजापति रज प्रधान प्रकृति को गतिशील कर उससे महत्तत्व उत्पन्न किया गया और महत्तत्व से अहंकार। वही अहंकार तत्वों में व्याप्त होकर तेजमय ब्रह्माण्ड-कोष की रचना में समर्थ हो सका। ब्रह्माण्ड-कोष में धन्य की नाभि से कमल और उसमें ब्रह्मा और देवी-देवताओं की सृष्टि

विद्याधर यह सत्य है प्रभु किन्तु इससे क्या निष्कर्ष निकलेंगे?

प्रजापति विद्याधर मैं एक नवीन चक्र की सृष्टि करना चाहता हूँ।

विद्याधर वह क्या?

प्रजापति पुरुष और स्त्री का निर्माण।

विद्याधर (आश्चर्य से)आप स्वर्ग की सृष्टि को भू मण्डल में भी ले जाना चाहते हैं? यह क्यों देवताओं की सृष्टि आप भू मण्डल में स्त्री पुरुष के रूप में करेंगे?

प्रजापति (दृढ़ता से) हाँ, करूँगा। अपने पिता के इस पाप-मोक्ष के लिए सब कुछ करूँगा।

विद्याधर (कौतूहल से) पाप मोक्ष कैसे होगा प्रभु?

प्रजापति अन्धकार का नाश करने के लिए बुद्धि का केन्द्र चाहिए न ? मैं बुद्धि का अभय केन्द्र पुरुष और स्त्री मे स्थापित करूँगा। पाप की जड पुण्य से काटूँगा। विष का विनाश अमृत से करूँगा। दुराचार को सदाचार से नष्ट करूँगा।

विद्याधर किन्तु स्वर्ग की सृष्टि भू मण्डल मे ले जाना अधर्म न होगा ?

प्रजापति विद्याधर, यदि यह अधर्म होगा तो मैं उसके लिए धर्म के नये सिद्धान्त बनाऊँगा। धर्म की परिभाषा तक म परिवर्तन करूँगा।

विद्याधर प्रभु कोई अनय न होगा ?

प्रजापति मै इसके लिए विश्वगुरु की सहायता मागूँगा। उन्होंने पापमय शरीर त्यागकर पुण्य देह धारण की है। मैं उनसे उस पुण्य देह का त्याग करने की प्रार्थना करूँगा।

विद्याधर उससे क्या होगा ?

प्रजापति उस देह के एक भाग से होगा पुरुष और दूसरे भाग से होगी स्त्री। मैं जीव को पुरुष और स्त्री शरीर धारण करने की आज्ञा दूँगा।

विद्याधर क्या विश्वगुरु इसके लिए तैयार होंगे ?

प्रजापति यदि व कलक से बचने के लिए एक शरीर छोड सकते हैं तो क्या अपने पुत्र को इस सदिच्छा के लिए दूसरा शरीर नही छोड सकते फिर नया शरीर धारण करेंगे। तुम स्वय कहते हो कि काल और अवस्था दोनो गतिशील हैं।

विद्याधर सत्य है। यही कीजिए, प्रभु !

प्रजापति मैं अभी विश्वगुरु स मिलने जा रहा हूँ। उनके पाप को अपनी सदिच्छा के पुण्य से दूर करूँगा। उनका जो दुराचार अहकार बनकर फैला हुआ है, उसे बुद्धि की किरण से नष्ट करूँगा। पुरुष और स्त्री की सृष्टि ! मन्वन्तर समाप्त हो रहा है। जाते जाते पिता के ऋण से उऋण होना चाहता हूँ विद्याधर ! इससे पहले कि मैं प्रजापति का आसन छोडू विश्वगुरु को दिखला दू कि मैं कितने कौशल से उनके पापाचार को पुरुष स्त्री के बुद्धि केन्द्र म विनष्ट कर सकता हूँ।

विद्याधर ठीक है, प्रभु !

प्रजापति पुरुष और स्त्री। दोनो माया से निर्मित होंगे किन्तु उनमे जो मर्यादा की रेखा होगी, उससे वे व्यवस्थित होंगे। आग और सर्दी एक साथ प्रवाहित होंगे ! किंतु उसमे एक विभाजक रेखा होगी। इन्द्रधनुष के रग साथ रहते हुए भी अलग रहते हैं। प्रत्येक रग

की एक एक विभाजक रेखा है। इसी प्रकार पुरुष और स्त्री के सम्बन्धों की एक एक विभाजक रेखा होगी। मैं उस बुद्धि की विभाजक-रेखा के एक रंग को दूसरे से न मिलने दूंगा। पिता पुरुष, कन्या स्त्री को देखकर भी न देखे! छूकर भी न छुए। प्रेम करता हुआ भी प्रेम न करे!

विद्याधर प्रभु आप बहुत बड़ा कार्य करेंगे।

प्रजापति माया, मोह और भ्रम से उत्पन्न मेरे ये खिलौने देवी देवताओं की अपेक्षा अच्छा व्यवहार करें विद्याधर, मैं यह चाहता हूँ। जो कार्य देवताओं से नहीं हो सका, वह पुरुष और स्त्री के रूप कर सकें। मेरे ये क्षणिक रंग शाश्वत रंगों से अच्छे हो सकें।

विद्याधर कल्पना अच्छी है, प्रभु!

प्रजापति उस कल्पना को सत्य से आलोकित करना चाहता हूँ। अच्छा अब मैं विश्वगुरु के समीप जाऊँगा। तुम तब तक यहीं रहो। मेनका इस समय अपनी पूजा समाप्त कर मुझसे आशीर्वाद लेने आई होगी। वह बाहर ही होगी। मेरे आने तक तुम उसे नृत्य करने की आज्ञा दो, जिससे यह समस्त वातावरण पुरुष और स्त्री का निर्माण करने की राग रंजित भावनाओं से परिपूर्ण हो जावे।

विद्याधर जो आज्ञा।

प्रजापति अच्छा, मैं जाता हूँ। इस समय मैं मेनका से नहीं मिलूंगा। विलम्ब होगा। मैं इस दक्षिण द्वार से जाऊँगा। शुभमस्तु!

विद्याधर प्रभु आपका मार्ग प्रशस्त हो, आपका निर्माण कार्य मंगलमय हो! प्रणाम।

[प्रजापति प्रणाम स्वीकार कर शीघ्रता से दक्षिण द्वार से जाते हैं।]

(गहरी सांस लेकर) प्रजापति के मन्वन्तर के समाप्त होने के पूर्व यह महाविधान क्या रूप धारण करेगा, यह विश्वात्मा के अतिरिक्त कौन कह सकेगा! शुभ हो, मंगलमय हो! (पुकारकर) मेनका!

[मेनका का प्रवेश। अत्यन्त रूपवती नवयुवती। मुस्कान से ही जिसके शरीर की सृष्टि हुई है। चितवन से जिसकी गति बनी है और चुम्बन से ही जिसके अधरों का निर्माण हुआ है। इन्द्रधनुषी वस्त्र पहने आती है। विशाल नेत्र,

जैसे प्रेम ने दो कमलों में निवास कर लिया है। माथे में कुंकुम, कानों में कुण्डल, कपोलों पर श्याम अलक। केश पाश में रत्न रेखा। कंठ में कोकनद का हार। वह गिरते हुए उत्तरीय को बायें हाथ से रोक रही है। कटि में किंकिणी, हाथों में वलय और पैरों में नूपुर। शरीर में मद्य प्रस्फुटित कमलों की सुगंधि। उस पर अंगराग, जो आलिंगन का मौन निमन्त्रण है। शरीर में चंचलता और उन्माद। उसके हाथों में पूजा पात्र है, जिसमें पुष्प राशि और मलय सुसज्जित है। कपूर जल रहा है और अगर का धूम है, मानो शृंगार के हाथ में भक्ति है। वह मंद गति से प्रवेश करती है जैसे निर्मल जल राशि में चन्द्रकला का उदय हो रहा है।]

विद्याधर मेनका, प्रजापति विश्वगुरु से मिलने गये हैं।

मेनका (अत्यन्त मधुर शब्दों में) तब तुम अकेले हो विद्याधर?

विद्याधर हाँ, मेनका, मैं अकेला हूँ भाग्य की तरह, किन्तु प्रभु की शक्ति के साथ।

मेनका *(विद्याधर की बातों को अनसुनी कर)* सुनते हो, लतिकाओं ने क्या कहा है? लतिकाओं ने कहा—'आज हम नहीं खिलेंगे *क्यों नहीं खिलेंगे*! *(भौंह सिकोड़कर) नहीं खिलेंगी क्योंकि* समीर कहीं भटक गया है, दूर देश चला गया है।

विद्याधर देवी, दूर देश नहीं गया होगा, यहीं कहीं पास होगा।

मेनका *(हरिण की चकित दृष्टि से) कहाँ है? (चारों ओर देखती है।)*

विद्याधर देवी, प्रतिदिन तो वह लतिकाओं से मिलता है। आज वह तुम्हारी मदिर साँस में भरकर तुम्हारे हृदय के स्पंदन का सुख ले रहा होगा (सँभलकर) नहीं, वह प्रभु के वश में

मेनका (हृदय स्पर्श करते हुए) स्पंदन का सुख (किंचित् मुस्कराकर) स्पंदन का सुख! विद्याधर, स्पंदन का सुख ले रहा है! और विद्याधर, वह तुम्हारी तरह निष्ठुर नहीं है।

विद्याधर देवी, मैं अब प्रजापति का सहायक हो गया हूँ। अब मैं प्रेमी विद्याधर नहीं अब तपस्वी विद्याधर हूँ।

मेनका (हँसकर) ओहो, तपस्वी महाराज। नेत्रों में तेज—कामदेव के बाणों की नोक नहीं। शरीर में भस्म—अंगराग नहीं, बाणी में मंत्र—प्रणय निवेदन नहीं। तपस्वी महाराज को प्रणाम।

विद्याधर देवी, अब मैं प्रभु प्रजापति के समीप हूँ, मेनका के समीप नही। अब मेरी शक्ति विकास मे लगेगी, विलास मे नही।

मेनका विद्याधर, विलास मे से ही सष्टि का विकास होता है।

विद्याधर देवी, यह प्रभु प्रजापति का कक्ष है, इद्र का नदन-निकुज नही। यहा की पवित्रता म केवल नूपुर की झनकार हो सकती है उसके साथ मन की झनकार नही। यहा बादल गरज सकते है किन्तु पानी नही बरस सकता। फूल खिल सकते हैं, पर वे कली की ओर नही देख सकते। यहा मेनका केवल नतकी है विलासिनी नही।

मेनका न नतकी हू, न विलासिनी। स्वय मैं प्रभु प्रजापति का आशीर्वाद लेने के लिए आई थी।

विद्याधर किन्तु मेनका, इस समय वे यहा नही हैं? यह पूजा का पात्र रख दो और वातावरण को इस प्रकार राग रजित करो कि

मेनका किस तरह (पूजा का पात्र पीठिका पर रख देती है)।

विद्याधर (सँभलकर) मैं प्रभु प्रजापति के निर्माण-काय का भेद हर किसी से नही कह सकता। जो उनकी आज्ञा है, उसी का पालन होना चाहिए।

मेनका विद्याधर, तुम्हारे हृदय से तो समाधि अच्छी है।

विद्याधर मेनका, मैं धम के आचरण की बात के अतिरिक्त कुछ नही सोच सकता।

मेनका विद्याधर, तुम वेद पढते हो, लेकिन क्या यह बतला सकते हो कि कोकिल वसत मे क्यो कूजती है। सुगन्धि किसे रिझाने के लिए फूल के द्वार खोलती है? लहरें किसके हृदय-तट को छूना चाहती हैं?

विद्याधर विश्वात्मा के।

मेनका (प्रजापति के हाथ से गिरा हुआ नील-कमल उठाकर) यह नील कमल जो अपने बिखरे हुए शरीर को इस पतले मृणाल के छोर पर समेटकर बैठा है किसकी प्रतीक्षा मे सुगन्धि के प्राण लिये है?

विद्याधर प्रभु प्रजापति की।

मेनका (मुस्कराकर) तुम्हारे विश्वात्मा और प्रभु प्रजापति के हृदय के भीतर कौन है?

विद्याधर धम इस प्रश्न के पूछने की आज्ञा नही देता।

मेनका विद्याधर, मैं बताऊँ कौन है?

विद्याधर मैं सुनना नहीं चाहता।

मेनका विद्याधर, विश्वात्मा और प्रजापति के हृदय के भीतर तुम हो, पुरुष हो। सुनते हो! सुन सकते हो?

विद्याधर (आश्चर्य से) मैं हूँ?

मेनका हाँ विद्याधर तुम, अनेक रूपों से—वसंत बनकर—देवता बनकर—हृदय बनकर तुम हो पुरुष, विद्याधर!

विद्याधर (सोचते हुए) तुम ठीक कहती हो, देवी! ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में ब्रह्मा की भावना में पुरुषत्व है। विश्वगुरु ने स्वयं मुझे सुनाया था—किन्तु मेनका

मेनका (तिरछी दृष्टि से) अब मेरी ओर देख सकते हो?

विद्याधर देवी, क्षमा करो! मैं तुमसे प्रेम करते हुए भी यहाँ तुमसे प्रेम की बात करने में विवश हूँ। मैं प्रजापति की सेवा में हूँ।

मेनका मैं भी अपने देवता कामदेव की पूजा कर अभी आ ही रही हूँ। मैं भी साधना मन्दिर से लौट रही हूँ।

विद्याधर कामदेव भी पूजा का देवता है, मेनका?

मेनका सावधान, विद्याधर! कामदेव ब्रह्मा के हृदय से उत्पन्न हुआ है। वह तो उसी समय से देवता मान लिया गया, जब से विश्वगुरु ने उसी देवता के संकेत से सरस्वती देवी

विद्याधर (रोककर) चुप मेनका! एक शब्द भी नहीं। यह बात मुँह पर न लाना।

मेनका विद्याधर, मुझे इस चर्चा का अवकाश भी नहीं। अमर हों विश्वगुरु ब्रह्मा के विचार। मैं यदि प्रेम-वार्ताएँ सुनाने लगूँ तो विद्याधर, तुम्हारे साधना-कक्ष में कलियाँ भी देवियाँ बनकर नृत्य करने लगेंगी।

विद्याधर शान्त, मेनका। यह रहस्य केवल मेरे प्रभु प्रजापति को ज्ञात है, जो उन्होंने मुझे आज बतलाया। तुम इसे कैसे जानती हो देवी?

मेनका यदि तुम्हारे प्रभु प्रजापति मुझे न बतलायें तो क्या मुझे कुछ मालूम ही न होगा? अन्य प्रजापतियों ने मुझ पर अनुग्रह किया था।

विद्याधर ओह, सर्वविजयिनी मेनका, मैं तुम्हारा अनुचर हूँ।

मेनका स्वयं अनंगरिपु भगवान शंकर मेरी सखी के अनुचर हैं, तो तुम्हारे अनुचर होने में क्या संतोष!

विद्याधर भगवान शंकर भी अनुचर हैं?

मेनका हाँ, कैलाश पर्वत पर विहार करनेवाली मेरी सखी को देखकर

भगवान शकर भी मुग्ध हो गये। किन्तु पार्वती के भय से वे उसे स्पष्ट रूप से देख नही सकते थे। जब मेरी सखी भगवान की प्रदक्षिणा कर रही थी, तो भगवान शकर ने उसे प्रत्येक क्षण देखने के लिए चारो ओर अपने चार मुख और बना लिये।

विद्याधर अच्छा, इसीलिए भगवान शकर के पाँच मुख हैं।

मेनका हाँ किन्तु नारद को तुम जानते हो। विग्रह के सूत्रधार। उन्होने पार्वती से यह भेद कह दिया तो पार्वती ने चारो मुखो की आँखें बन्द कर दी।

विद्याधर (हँसकर) ओह पार्वती ने यह किया !

मेनका तुम सम्भवत स्त्री की ईर्ष्या नही जानते, केवल अप्सराओ से प्रेम कर सके हो न ? इसीलिए ! जब पार्वती ने किसी भाँति भी भगवान के नेत्रो को नही खुलने दिया, तो भगवान ने अपने मस्तक पर तीसरे नेत्र की सृष्टि की।

विद्याधर ओह ! तीसरे नेत्र की !

मेनका प्रिय विद्याधर, यह धर्म की जीत है कि प्रेम की ?

विद्याधर मेरे लिए प्रेम ही धर्म है, मेनका। जो भावना-पक्ष मे प्रेम है, वही साधना-पक्ष मे धर्म। साधना पक्ष मे प्रजापति का सेवक हूँ, भावना पक्ष मे तुम्हारा अनुचर।

मेनका यदि मेरे अनुचर होने मे तुम्हें साधना पक्ष छोडना पडे तो ?

विद्याधर देवी, तुम मेरी परीक्षा ले रही हो।

मेनका अच्छा, जाने दो ! यही बहुत है कि भावना पक्ष मे विद्याधर मेनका के अनुचर हैं। किसलिए मुझे बुलाया था ?

विद्याधर प्रजापति, अभी विश्वगुरु की सेवा मे गये हैं, उनसे उसी समस्या का हल पूछने के लिए। उन्होने मुझे आज्ञा दी है कि मैं तुमसे नृत्य करने के लिए निवेदन करूँ, जिससे यह समस्त वातावरण अनुराग के रग से रजित हो उठे।

मेनका एक बात है विद्याधर, इस नृत्य के बाद नन्दन कुज मे मेरे हाथो से एक मधु पात्र !

विद्याधर तुम्हारी इच्छा, देवी !

[मेनका वातायन की ओर जाती है]

मेनका मेरी किन्नरियाँ अलका से नवीन शरीर धारण कर आज ही आयी हैं। उन्हे भी बुला लूँ ? (सकेत करके दो किन्नरियो को बुलाती है। फिर आकर नृत्य की मुद्रा धारण करती है। इतने

में ही किन्नरियां नूपुर शब्द के साथ नृत्य में सम्मिलित हो जाती हैं। कुछ देर तक लास्य नृत्य होता है। विद्याधर तन्मय होकर देखता है।)

[गम्भीर मुद्रा में प्रजापति का प्रवेश। वे नीची दृष्टि किये हुए आते हैं। मेनका और किन्नरियों का नृत्य रुक जाता है। वे प्रजापति को हाथ जोड़कर प्रणाम करती हैं।]

प्रजापति (रूखे स्वर में) तुम लोग जाओ। मैं अशान्त हूँ।

[मेनका और किन्नरियों का प्रस्थान]

विद्याधर क्या हुआ प्रभु ?

प्रजापति कुछ नहीं हो सका विद्याधर, कुछ नहीं हो सका !

विद्याधर आपने विश्वगुरु के दर्शन किये ?

प्रजापति किये, किन्तु कुछ फल नहीं हुआ !

विद्याधर (आश्चर्य से) कुछ फल नहीं हुआ ?

प्रजापति हां, विश्वगुरु मेरे मत से सहमत नहीं हैं।

विद्याधर क्यों ?

प्रजापति वे कहते हैं कि कलंक को छिपाने के लिए जो भी कार्य किया जायगा वह भी कलंक होगा। मेरे कलंक को छिपाने की आवश्यकता नहीं। संसार में मेरी कलंक कथा अन्धकार बनकर व्याप्त रहने दो।

विद्याधर वे महात्मा हैं प्रभु, वे विश्वगुरु हैं।

प्रजापति किन्तु मेरे हृदय को सन्तोष कैसे हो ? विद्याधर, उन्हें मेरी इच्छा पूर्ति में सहायक होना ही होगा। यदि वे मेरा साथ न देंगे तो मैं अपनी शक्ति का प्रयोग करूँगा।

विद्याधर जब उन्होंने एक बार अपनी सहमति नहीं दिखलायी, तो फिर वे आपके सहायक कैसे हो सकते हैं ?

प्रजापति तो विद्याधर सुनो, मैं भी अपने योगबल से उनके शरीर का नाश करके उसके दो भागों से स्त्री पुरुष बनाऊँगा। मैं अपने कर्तव्य-पथ से नहीं हट सकता। अन्धकार का नाश तो करूँगा ही।

विद्याधर किन्तु यदि विश्वगुरु नहीं चाहते, तो अन्धकार का नाश नहीं होगा।

प्रजापति न हो, मैं यथाशक्ति उसको दूर करने का उपाय करूँगा। (रुककर) आह, मैं कुछ और बात देख रहा हूँ। मुझे इस वातावरण में कुछ वासना की दुर्गन्ध सी मिल रही है !

विद्याधर प्रभु ! कैसी वासना ?

प्रजापति तुमने मेनका से प्रेम की बातें की हैं !

विद्याधर (हाथ जोडकर) प्रभु, क्षमा हो।

प्रजापति मेरे साधना गह म तुम इद्रियो की आग नही जला सकते। आत्मा के प्रकाश को तुम इद्रियों के धूम्र से धुधला करना चाहते हो ? विद्याधर, तुमने मेनका से प्रेम की बातें की हैं।

विद्याधर मैं बाध्य किया गया, प्रभु !

प्रजापति पुरुष होकर यह कहते हुए तुम्हे लज्जा नही आती ? पुरुष बाध्य नही किया जा सकता, विद्याधर ! आकाश को कोई खीचकर बढा नही सकता। कल्पतरु को कोई दबाकर छोटा नही कर सकता। पुरुष को कोई खीच नही सकता, उसे कोई छोटा नही कर सकता। हाँ, इद्रिया के घडे म आकाश को घटाकाश बनाया जा सकता है, कल्पवृक्ष के फूल को तोडकर वेणी का शृङ्गार किया जा सकता है !

विद्याधर (फिर हाथ जोडकर) क्षमा हो प्रभु।

प्रजापति सूक्ष्म आकाश का शब्द कह रहा है कि तुम आज सध्या-समय नदन-कुज मे मेनका के हाथ से मधु-पात्र पी रहे हो। जाओ, पुरुष होकर नारी की कोमलता मधु-पात्र भरकर पिओ। (और सोचते हुए) मेनका, तू देवी होकर भी स्त्री ही है ! अच्छा तुम दोनो के भविष्य का निर्माण भी मैं अपने समाप्त होते हुए क्षणो में करूंगा।

विद्याधर प्रभु, मेरा अपराध भी !

प्रजापति मेरे साधना गह को तुम इस प्रकार अपवित्र नही कर सकते। आत्मा के पुण्य-गृह का तुम पाप की कालिमा मे मलिन करना चाहते हो ? विद्याधर, मेनका से तुम्हारा प्रेम है तो करने के लिए इद्र के नन्दन की भिक्षा माँगो। कलियो से कहो कि वे तुम्हारी इच्छा की आग मे भी खिली रहे। पवन से कहो कि वह तुम्हारे सयोग मे साँस बनकर सजीव हो जाय, किन्तु मेरे सहायक होकर मेरी पूजा मे रौरव की दुर्गंध नही भर सकते ! मैं जानता था कि गायक विद्याधर अतत गायक ही है। जल हिम बनकर भी जल का गुण रखेगा। कमल सूखकर भी कमल ही रहेगा। तुम तपस्वी नही हो सके, विद्याधर। गायक भी कही विचारक हुआ है ?

विद्याधर प्रभु, गायिका सरस्वती देवी मे विचार ।

प्रजापति चुप रहो, विद्याधर। उफ सरस्वती! फिर वही आग। फिर वही भयंकर प्रतारणा! विद्याधर, जाओ। मेरे वातावरण को और कलुषित मत करो। अभी पिता के कलंक-कृत्य से पीड़ित हूं। कहीं धीरे धीरे सेवक के कलंक-कृत्य से पीड़ित न हो जाऊं। तुम आज से मेरी सेवा में नहीं रहोगे। घुंघराली अलका की भांति विधर्मी, विद्याधर!

[विद्याधर का नतमस्तक होकर प्रस्थान]

(अशांत चित्त से) सरस्वती, गायिका होते हुए भी विचार कर सकती है। उसने यह विचार नहीं किया कि पिता के चंचल हृदय को ठोकर मारकर स्थिर कर दे? (जोर से) सृष्टि, स्थिर हो! मैं भी तेरी मर्यादा सुरक्षित रखूंगा। अपने पद के अंतिम दिवस में भी तेरे लिए प्रबंध करके विदा लूंगा!

[नेपथ्य में विद्याधर की कण्ठ-ध्वनि—"मेनका, मुझे सहारा दो सहारा दो!"]

(दुहराते हुए) सहारा दो! मेनका और विद्याधर? दोनों में एक-दूसरे के प्रति आकर्षण जैसे जन्म मृत्यु में परस्पर आकर्षण हो। जन्म और मृत्यु मृत्यु और जन्म! इनमें कौन जन्म है और कौन मृत्यु?

[नेपथ्य में प्रजापति की विजय हो]

(घूमकर) कौन? माया?

[माया का प्रवेश—सुंदर युवती श्वेत साड़ी, जिस पर लहरों के चित्र, जो अस्थिरता के द्योतक हैं। वासंती शृङ्गार, जिससे नश्वरता का बोध होता है। नेत्र विशाल जिनमें अंजन। कण्ठ में त्रिगुणमय तीन पुष्प मालाएं। मुक्त केश, जिनसे सुगंध शतमुखी होकर दिशाओं में वरदान की भांति वितरित हो रही है। माथे में अरुण बिंदी, जिसकी लालिमा में अपनी किरणों को डुबाकर बाल सूर्य प्रभात का चित्र खींचता है। हाथों में अंगराग और पुष्प वलय किंकिणी और नूपुर। वह आकर प्रजापति को प्रणाम करती है।]

माया प्रजापति के अनुसार पृथ्वी और चन्द्रमा का निर्माण हो गया।

प्रजापति ठीक ! पृथ्वी मे कौन ऐसी विशेषता रक्खी है ?

माया वहा उत्साह मे बने हुए पहाड हैं, प्रेम की गहरी नदिया हैं, रूप के चचल झरने है ! लहर वहा अभिलाषा की तरह फैलती है। फूल कली के उभार म मुस्कराते हैं, इन्द्रधनुष आकाश मे प्रेम की क्यारिया सप्त रङ्गो से सजाते हैं।

प्रजापति और चन्द्र ?

माया *कल्पवृक्ष के कुसुम के आकार का मैंने एक चित्र बनाया था।* उसकी पखुडिया मिटाकर मैंने उसी को गतिशीलता दे दी है। वह मिलन और वियोग की कसौटी है, जिस पर हँसी और आँसू की रेखाएँ खीची जा सकेंगी। वह आशा की तरह घटता और निराशा की तरह बढता है। ससार की परिवतनशीलता का आकाश मे जैसे प्रतिबिम्ब पड रहा हो, ऐसा वह दिखाई देगा, किन्तु इस तरह से कोई समझेगा नही।

प्रजापति माया, मेरी प्रेरणाओ को तुम इतना अच्छा आकार दे सकती हो ! मेरा वरदान है कि तुम्हारे चित्र मिथ्या होते हुए भी सत्य के समान प्रतीत होंगे। अच्छा, तुम जाओ। अब मैं योग साधन करूँगा। हाँ, तुम्हे एक बात मालूम है ?

माया क्या प्रजापति ?

प्रजापति मेनका और विद्याधर ने मेरे साधना कक्ष को प्रणय-गृह बना लिया था।

माया (विकृत स्वर से) यह धृष्टता, प्रजापति !

प्रजापति हा मैं जानता था कि इस प्रकार की घटना हो सकती है। मलय और पवन को एक साथ रखने में सुगधि का फैलना स्वाभाविक है, किन्तु मैं यह जानना चाहता था कि गायक विद्याधर तपस्वी हो सका है कि नही। यह उसकी छोटी-सी परीक्षा थी और वह उसमे सफल नही हो सका। माया, प्रेम की *भावना तो ऐसी होनी चाहिए कि उससे जीवन का अन्त जीवन* के आदि से अच्छा बन जाय।

माया किस प्रकार प्रभु ?

प्रजापति अभी तुम्हे ज्ञात हो जायगा। मेनका के प्रणय की एक मनोरजक विकृति होगी !

माया प्रभु, प्रणय तो मेरी सबसे बडी शक्ति है।

प्रजापति जिसमे आँसू और हँसी साथ मिलकर जीवन का चित्र खीचत

हैं। जिसमे विवशता का नाम आत्म समर्पण हो जाता है। इच्छा ऐसे व्यूह मे घूमकर बढ़ती है कि उसका नाम प्रेम हो जाता है! जहाँ दो निर्विकार प्राण शरीर के निकट स्पर्श की मादकता मे फूलो की सुगंधि पर बैठकर कोकिल के कंठ मे गा उठते हैं और तब शरीर के प्रत्येक रोम की नोक पर सुख या दुख ध्रुवलोक की भाँति स्थिर हो जाता है। और तब मुस्कान की रेखा मे वसत मचलने लगता है और कपोलों के हलके उभार की सीमा पर आसू की रुकी हुई एक विकल बूद मे विषाद एक प्रलयकारी वर्षा की सृष्टि कर देता है। यही है न तुम्हारा प्रणय?

माया किन्तु प्रभु, इस क्रीडा मे अमर सौंदर्य है।

प्रजापति वह सौंदर्य मेरे वक्ष ने देखा है। आज ही कुछ क्षण पहले—अब उसकी चर्चा ससार मे होगी। मेनका और विद्याधर की प्रेम चर्चा!

माया प्रजापति, उनकी प्रेम चर्चा तो इन्द्रलोक तक फैली हुई है। पुरदर ने दोनो की प्रणय क्रीडा के लिए नदन-वन के कुजो मे पुष्पो को चिरकाल खिले रहने की शिक्षा दी है। घृताची और तिलोत्तमा ने अपने दृष्टि पथ पर अनग को चलने की आज्ञा दी है।

प्रजापति क्यो?

माया उर्वशी को विद्याधर की दृष्टि से बचाने के लिए पुरदर और स्वर्ग की नव अप्सराओ ने मेनका को उससे प्रणय निवेदन की आज्ञा दी है।

प्रजापति पुरूरवा की उर्वशी?

माया प्रभु, आपका व्यग मैं समझती हूँ। पुरदर सौंदर्य के सामने ग्राह्य और अग्राह्य मे अन्तर नही समझते। गधर्वों की सहायता से उन्होने उर्वशी को फिर अपनी सभा मे बुलवा लिया है। अब पुरूरवा का जीवन परिताप की कहानी बन गया है!

प्रजापति और अश्विनीकुमारो ने बाधा नही डाली?

माया प्रभु, अश्विनीकुमार दो हैं। उर्वशी ने अश्विनीकुमारो से कहा कि प्रेम केवल दो व्यक्तियो मे होता है। सरिता के दो किनारे हैं, तीन नही। आप दोनो परस्पर प्रेम कीजिए और मुझे छोड दीजिए। या फिर आपस मे केवल एक मुझे प्रेम करे, दूसरा छोड दे। प्रेम केवल दो मे होता है, तीन मे नही। अश्विनीकुमार दो हैं। वे एक नही हो सके।

प्रजापति (हँसकर) अश्विनीकुमारों को चाहिए कि वे ऐरावत के पैरों से दबकर एक हो जाते ! बेचारे दो ! तब माया, उनकी बात का विश्वास क्या ? वे दो मुँह से बोलते होंगे।

माया (हँसकर) प्रभु, उनसे कोई एकांत में बात नहीं कर सकता और उनसे तो प्रेम हो ही नहीं सकता। सूर्य और चन्द्र एक साथ हों तो न दिन हो, न रात।

प्रजापति (स्मरण कर) ओह रात ! अन्धकार ! माया, तुम जाओ। मैं चिन्तन करूँगा।

माया फिर प्रभु, विद्याधर और मेनका के सम्बन्ध में आपने कोई निर्णय नहीं दिया।

प्रजापति हाँ, उनके सम्बन्ध में मेरा निर्णय है।

माया आज्ञा।

प्रजापति मेनका को पुरुष रूप में और विद्याधर को स्त्री रूप में संसार के क्रोड़ में भेजना होगा।

माया यह रूप परिवर्तन क्यों ?

प्रजापति मेनका में विजय-गर्व है, यह पुरुष की विशेषता है, और विद्याधर में आत्म समर्पण, यह स्त्री की विशेषता है। उनके इन चित्रों से पृथ्वी के चित्रपट पर कुछ प्रयोग करूँगा। उसमें मेरे दंड की व्यवस्था भी होगी उनकी दुर्विनीतता के लिए।

माया जो आज्ञा। मैं जाऊँ ?

प्रजापति हाँ विश्वात्मा की प्रार्थना के लिए पुष्प-हार लाओ।

माया अभी लाई।

प्रजापति (सोचते हुए) विश्वात्मा की इच्छा। स्त्री और पुरुष का निर्माण। पृथ्वी पर जीवन की सृष्टि। मेरी सदिच्छा की प्रेरणा से विश्वगुरु के शरीर का विभाजन। (माया नीलकमल का हार एवं स्वर्ण-थाल में प्रस्तुत करती है। प्रजापति कमल-हार स्वीकार करते हैं। माया प्रणाम करके जाती है। प्रजापति कुछ देर तक हार हाथों में फेरते हुए सोचते हैं। फिर दोनों हाथ उठाकर नतमस्तक हो आँखें बन्द कर खड़े रहते हैं)

प्रजापति (नेत्र बन्द किये हुए) सत, चित, आनन्द !

[कुछ क्षण शांति, फिर द्वार पर शब्द]

प्रजापति (आँखें खोलकर) कौन ? आओ।

[अश्विनीकुमारों का प्रवेश। दोनों का एक ही रूप। दोनों

वटु वेश मे हैं। पीत वस्त्र हैं। मुक्त वेश। माथे पर पीत चन्दन। पैर मे पादुकाएँ]

दोनो (क्रम से) एक—दो—एक—दो।

प्रजापति उर्वशी का सिखलाया हुआ यह संख्या पाठ। विश्वात्मा का नाम लो। केवल एक।

प्रथम अश्विनी प्रभु! उर्वशी का नाम। उर्वशी।

द्वितीय अश्विनी प्रभु! उर्वशी का प्रेम। उर्वशी।

प्रजापति (प्रथम अश्विनी से) तुम कहते हो नाम (द्वितीय अश्विनी से) तुम कहते हो प्रेम! एक बात कहो तो कुछ समझ मे आये।

प्रथम अश्विनी नाम।

द्वितीय अश्विनी प्रेम।

प्रजापति अच्छा प्रेम का नाम। हाँ, कैसी उर्वशी?

प्रथम अश्विनी प्रभु, पुरंदर स्वार्थी है। वह उर्वशी से प्रेम करने के लिए मुझे मार्ग से हटाना चाहता है।

द्वितीय अश्विनी हटाना चाहता है, प्रभु!

प्रजापति हाँ, अब एक बात कहते हो।

प्रथम अश्विनी पुरंदर ने उर्वशी को न जाने क्या सिखला दिया? वह कहती है, सरिता के किनारे दो होते है, तीन नही।

द्वितीय अश्विनी मैंने कहा—चार किनारे कर लो। तालाब बन जाओ। हम अपने साथ प्रजापति को ले आयेंगे। हम लोग तीन हो जायेंगे, तुम चौथी हो जाना।

प्रजापति मैं उर्वशी से प्रेम करूँ?

द्वितीय अश्विनी क्या हानि है!

प्रथम अश्विनी कोई हानि नही!

प्रजापति (अधिकार के स्वर मे) अश्विनीकुमार, तुम लोग यदि मेरा नाम लोगे तो योग-साधन से तुम्हे दंड दूंगा। सावधान। तेल और पानी नही मिल सकते। मेरा प्रेम तरल है किन्तु वह ईश्वर के स्नेह मे है! तुम्हारा प्रेम तरल है, किन्तु वह दैनिक जीवन मे है। स्नेह और जीवन रहने दो मेरे लिए, केवल मेरे लिए।

प्रथम अश्विनी क्षमा कीजिए प्रभु, दोषी हूँ।

द्वितीय अश्विनी क्षमा कीजिए प्रभु! मैं भी अदोषी नही हूँ।

प्रजापति एक ही बात किन्तु भिन्न शब्द। तुम लोग स्वभाव से रूखे हो, प्रेम नही कर सकते। प्रेम के लिए आवश्यकता है मुस्कान की, तुम मुस्करा नही सकते।

प्रथम अश्विनी — प्रभु, मैंने उवशी को मोहित करने के लिए अश्व का मस्तक उतारकर फेंक दिया। देवताओ का मुख धारण किया और मुस्कान उत्पन्न की, फिर भी उवशी

द्वितीय अश्विनी — प्रभु, सुरो का मुख धारण किया, फिर भी उवशी

प्रजापति — घोडे का मुख बदल जाय, किन्तु स्वभाव नही बदल सकता !

प्रथम अश्विनी — प्रभु उवशी को आप घोडी बना दीजिए।

द्वितीय अश्विनी — अश्विनी बना दीजिए, प्रभु।

प्रजापति — (हँसकर) फिर तुम्हारी मा भी अश्विनी और स्त्री भी अश्विनी ! देवताओ को अधिक लाछित मत करो, अश्विनी कुमार !

प्रथम अश्विनी — प्रभु, प्रेम मे क्या स्त्री और क्या अश्विनी ?

द्वितीय अश्विनी — प्रेम मे क्या

प्रजापति — तुम लोग वीणा के दो तारो की तरह हो, मिलकर भी अलग हो। देखो, तुम ऐरावत को जानते हो ?

प्रथम अश्विनी — हा प्रभु, पुरदर का हाथी ! समुद्र मन्थन का चौथा रत्न।

द्वितीय अश्विनी — हा, प्रभु, पाचवें रत्न कौस्तुभ पदमराग मणि के पूव का चौथा रत्न !

प्रजापति — उस ऐरावत के पैरो से दबकर दोनो एक नही हो सकते ? अमर होने से तुम लोग मर नही सकते, किन्तु एक हो सकते हो !

प्रथम अश्विनी — प्रभु यदि उसने हृदय पर पैर रख दिया तो प्रेम की भावना ही गई—उवशी तो दूर की बात है !

द्वितीय अश्विनी — प्रभु फिर उवशी गई !

प्रथम अश्विनी — और पुरदर हम लोगो से जलता है। उसने यज्ञ मे देवो म हमे नही लिया। अकेला सोमरस पीता है और हम लोग मुँह देखते हैं।

द्वितीय अश्विनी — कभी इसका, कभी उसका।

प्रजापति — और उवशी का ?

प्रथम अश्विनी — प्रभु, उवशी मिल जाय तो मैं अपने रथ पर बिठला कर सूर्योदय से पहले ही उसके मुख से प्रकाश फैला दूगा। पक्षियो से खीचा जानेवाला हमारा रथ सदव सूय के रथ से आगे रहता है।

द्वितीय अश्विनी — प्रभु उवशी मिल जाय तो मैं अपने रथ पर बिठला कर चन्द्रोदय से पहले ही उसके मुख स प्रकाश फैला दूगा। पक्षियो से खीचा जानवाला हमारा रथ सदैव चन्द्र के रथ से आगे रहता है।

प्रजापति — तुम दोना प्रकाश के पूव की धुधली ज्योति हो, प्रकाश के बीज

हो। मैं तुम्हारा हित कर सकता हूँ। किन्तु तुम यदि एक हो तो अच्छा है।

प्रथम अश्विनी प्रभु च्यवन ऋषि को युवक बनाने में हम दोनों का हाथ है।

द्वितीय अश्विनी प्रभु, सिद्धिनिर्मित सरोवर में च्यवन को हम दोनों ने नहलाकर युवक बनाया। सती सुकन्या का आशीर्वाद हम दोनों को प्राप्त है। हम एक कैसे हो सकते हैं प्रभु!

प्रजापति तुम दोनों नेत्रों की तरह हो। एक दृश्य देखते हो, किन्तु रूप में अलग-अलग। अच्छा है तुम लोग अलग ही रहो।

प्रथम अश्विनी मैं प्रकाश का रूप हूँ।

द्वितीय अश्विनी मैं अंधकार का रूप हूँ।

प्रजापति आह, अंधकार! तुम लोगों में से भी एक अंधकार का समर्थक है! जाओ तुम लोग! अंधकार... अंधकार! फिर याद दिला दी!

प्रथम अश्विनी (जाते हुए करुण स्वर में) आह, उर्वशी

द्वितीय अश्विनी (जाते हुए करुण स्वर में) आह, उर्वशी

प्रजापति जाओ, वैद्यक से देवताओं को प्रसन्न करो पहले। फिर 'आह उर्वशी', 'आह उर्वशी' कहना। ये भी अंधकार के अग्रदूत हैं। मैं पुरुष और स्त्री के निर्माण से इस अंधकार को अवश्य दूर करने की चेष्टा करूँगा।

[दरवाजे पर शब्द]

कौन? आओ। (सोचकर) ओह, मेनका की जीवात्मा!

[एक जीवात्मा का प्रवेश, श्वेत वस्त्र से सुसज्जित]

जीवात्मा (अंधे की तरह लड़खड़ाते हुए) सत्, चित् आनन्द!

प्रजापति आओ, आओ! तुम जागे?

जीवात्मा (आँख खोलकर) कौन?

प्रजापति मैं प्रजापति। सृष्टि का रचयिता! अपने मन्वंतर के अंत में मेरे द्वारा तुम्हारा निर्माण। तुम जीव हो। विश्वात्मा की इच्छा और मेरे सहयोग से उत्पन्न। विश्वगुरु के शरीर के भाग! विश्वात्मा के रूप।

जीवात्मा (धीरे धीरे दुहराता हुआ) विश्वात्मा के रूप!

प्रजापति (दृढ़ता से) तुम विश्वात्मा के रूप उसके अंश हो।

जीवात्मा जैसे प्रकाश की किरणों को विभाजित कर दिया। सागर की

लहरो को स्थिर कर तट पर रख दिया। वैसे ही अनुभव हुआ, जागति की एक लहर आई और मुझमे समाकर लौट गई। यह जागति, यह स्पन्दन ! (हृदय छूता है) देखो प्रजापति।

प्रजापति (जीवात्मा का हृदय स्पश करते हुए) हा, स्पन्दन हो रहा है। विश्वात्मा की अनन्त शक्ति स तुम जागे हो।

[जीवात्मा चकित हाकर शून्य मे देखता है]

विस्मित होकर क्या देख रहे हो?

जीवात्मा (विह्वल होकर) प्रकाश, आनन्द, उल्लास, सौन्दय। सीमा नही है। प्रत्येक का एक आकाश है। उसमे वही, सब कुछ वही। और वह आकाश मुझसे निकलकर मुझी मे समा रहा है।

प्रजापति (मुस्कराकर) इतना अधिक!

जीवात्मा बहुत अधिक, असह्य!

प्रजापति तो भूमडल मे चले जाओ। सभव है, यह उल्लास, यह सौदय कुछ कम हो जावे। भूमडल म देखना—इतना प्रकाश, इतना आनन्द—इतना उल्लास है या नही।

जीवात्मा (आश्चय से) भू मडल।

प्रजापति हाँ, भू मडल।

जीवात्मा कहाँ है?

प्रजापति इधर आओ। (दक्षिण द्वार की ओर ले जाकर शून्य मे सकेत करते हुए) देखो, इधर क्या है?

जीवात्मा (आश्चयचकित होकर) अनक प्रकाश पिंड, बडे और छोटे। कितनी गति से घूम रहे हैं। (प्रसन्नता से) अरे, यह कितने पास आ रहा है। ओहो, यह ! (प्रजापति से) प्रजापति, बचो। अरे, यह घूमकर उधर चला गया ! (प्रजापति की ओर देखकर आश्चर्यचकित) प्रजा पति?

प्रजापति ये अनक सौर मडल हैं। सहस्रो सूय और उनकी प्रदक्षिणा करनेवाले अनक ग्रह और उपग्रह, देखो ! यह सूय देखो ! यह अतरिक्ष के मध्य भाग म स्थित है। भूगोल के मध्य-स्थान का नाम अतरिक्ष है। उसी म सूय गतिशील होता है।

जीवात्मा (जिज्ञासा से) सूय से क्या होता है?

प्रजापति जीवन का प्रकाश, आनन्द उल्लास। उत्तरायण, दक्षिणायन विषुवत गतियो म जसे सूय का उत्थान, पतन और समत्व होता है।

जीवात्मा (उँगली से संकेत कर) और वह स्तूप क्या है ?

प्रजापति वह मेरु पर्वत है ! उसी के चारों ओर सूर्य प्रदक्षिणा करता है। उस मेरु के उत्तर में इन्द्र की नगरी देवधानी है, दक्षिण में यमराज की नगरी सयमिनी है, पश्चिम में वरुण की नगरी निम्लोचनी है और उत्तर में कुबेर की नगरी विभावरी है।

जीवात्मा इनमें से ही किसी स्थान पर मुझे भेज दीजिए।

प्रजापति नहीं, तुम्हें भूमण्डल में जाना होगा, पृथ्वी पर।

जीवात्मा पृथ्वी कहाँ है ?

प्रजापति (दिखलाते हुए) देखो, उस कोने से जो सबसे छोटा सूर्य है, उसके चारों ओर बिन्दु घूम रहे हैं, उन्हें देखते हो ?

जीवात्मा (भौंह सिकोड़कर झुकते हुए) ओह बहुत छोटे छोटे हैं ?

प्रजापति उन्हीं में एक बिन्दु है जिसकी प्रदक्षिणा एक और छोटा बिन्दु कर रहा है। उसे चन्द्र कहते हैं भू मंडल है। दिखा ?

जीवात्मा (देखते हुए) हाँ, कुछ कुछ दीख रहा है। बहुत छोटा है। यह तो मेरा अणु मात्र भी नहीं है। मैं उसमें समाऊँगा कैसे ?

प्रजापति मैं तुम्हें कल्पना का शरीर दूँगा। उसी में संचित होकर तुम जाओगे।

जीवात्मा मैं समझ ही नहीं सकता, प्रजापति ! जहाँ इतने बड़े आकाश मुझमें मिल रहे हैं, भू मंडल में मैं अपने को किस प्रकार बन्द करूँगा ?

प्रजापति एक चंचल स्वप्न के पंख पर उड़कर तुम वहाँ पहुँच जाओगे और तब तुम्हें वही भू मंडल अपनी आशा से भी बड़ा ज्ञात होगा। और जिस शरीर में तुम जाओगे, वह एक नगर से किसी भाँति भी कम न होगा। उसमें एक राजा होगा पुरंजय की तरह। उसकी एक सुन्दर स्त्री होगी। उसकी रक्षा एक बड़ा भारी साँप करेगा। उस नगर के दस दरवाजे होंगे !

जीवात्मा तुम मुझे आश्चर्य में डाल रहे हो, प्रजापति !

प्रजापति नहीं, वह भू-मंडल बहुत मनोरंजक स्थान है। आओ, बैठो तुम्हें सुनाऊँ। (दोनों छोटी पीठिकाओं पर बैठते हैं।)

जीवात्मा (बैठते हुए) बहुत मनोरंजक स्थान है वह !

प्रजापति हाँ, वह एक ठोस चमकदार मिट्टी होगी। उसका नाम होगा 'सोना'। वहाँ का जीव उस मिट्टी की परिधि में बिन्दु बनकर बैठेगा और उसी में चक्कर लगाएगा। वह मिट्टी का सिंहासन बनाकर उस पर ईश्वर को बिठलाने के बदले स्वयं बैठ जायगा।

और अपने साथियों से कहेगा कि वे उस सिंहासन को उठाकर चलें। स्वभावत वह उस मिट्टी के रंग से पाप को पुण्य बना देगा। हाँ, पाप का भी पुण्य !

जीवात्मा असम्भव बातें मत कहो, प्रजापति !

प्रजापति ये असम्भव बातें नहीं हैं, जब तुम वहाँ जाओगे तो उसी 'सोने' से अपने साथियों में भेद उत्पन्न करोगे। कोई होगा राजा, कोई होगा किसान। कोई स्वामी होगा, कोई श्रमजीवी। यह सुनहली मिट्टी जिसके पास जितनी अधिक होगी वह उतना ही बड़ा होगा, हाँ उतना ही बड़ा। वह अपने को ब्रह्मा से भी बड़ा समझेगा। राजा कहेगा—अन्न उत्पन्न करो और मेरा कोष भरो। किसान अन्न उत्पन्न करेगा और राजा का कोष भरेगा। स्वामी कहेगा—काम करो और भूखे रहो। सेवक काम करेगा और भूखा रहेगा।

जीवात्मा (आश्चर्य से) बड़ी विचित्र बात होगी। ऐसे 'सोने' को जरूर देखूंगा।

प्रजापति हां, जाओ। मैं तुम्हें पुरुष बनाकर भेजूंगा।

जीवात्मा पुरुष क्या ?

प्रजापति शक्ति के संचित कोष का नाम 'पुरुष' है। किन्तु वहां प्रायः ऐसे अवसर आवेंगे, जहां पुरुष शक्ति के प्रयोग में अपना ही नाश करेगा। वह ऐसे यन्त्र निकालेगा, जो दैत्य बनकर उसे खा जायेंगे। वह अपने विनाश के बीज बोकर कहेगा कि मैं अमर हूँ। किन्तु तुम ? तुम्हें मैं आज्ञा देता हूँ कि तुम वहाँ जाकर जहां तक हो सके अंधकार से युद्ध करोगे। उसका विनाश करो। यही मेरी आज्ञा है। मैं समस्त पापाचार का अन्त देखना चाहता हूँ।

जीवात्मा पापाचार मैं नहीं जानता प्रजापति !

प्रजापति पापाचार ? जब तुम अपने उस कल्पना के शरीर से अपनी आत्मा पर बैठ जाओगे तो पापाचार होगा। अपने सेवकों को जब तुम स्वामी बनाकर स्वयं उनके सेवक होगे तो पापाचार होगा। इच्छा के ऐरावत पर बैठकर तुम आत्मा को पदचर बनाओगे तो पापाचार होगा। जब तुम अपनी पवित्र भावनाओं के पिता होते हुए स्वयं उत्पन्न की हुई निधियों से प्रेम करोगे तो पापाचार होगा।

जीवात्मा यह तो बड़ी भयानक बात होगी प्रजापति !

प्रजापति तुम्हे इस भयानकता का विनाश करना होगा, मैं यह उत्तरदायित्व तुम्हें देता हूँ।

जीवात्मा स्वीकार करता हूँ। अब मैं जाऊँ ?

प्रजापति तुम्हे तीस वष की आयु देता हूँ। तुम मेरे पास केवल तीस क्षणो मे आ जाओगे, क्योंकि मेरा एक क्षण तुम्हारे एक वष के समान होगा। तुम मेरे और अपने बीच मे सास की दीवाल उठाओगे।

जीवात्मा जो आज्ञा ! मैं भू मडल का रास्ता तो नही भूलूगा ?

प्रजापति तुम वायु का रूप रखकर बह जाओ। तुम्हारे लिए पुरुष का शरीर प्रस्तुत हो चुका है। माया के द्वारा तुम सास बनकर उसी शरीर मे प्रवेश कर जाओगे। मेरी शक्ति तुम्हारा पथ प्रदशन करेगी।

जीवात्मा बहुत अच्छा। सत् चित् आनद ।

[जीवात्मा का प्रस्थान]

प्रजापति (सोचते हुए) आज मेरे मवतर का अतिम दिन है। मैं चाहता हूँ कि दूसरे प्रजापति के आने के पूव मैं भू मडल मे पुरुष स्त्री की सृष्टि कर दू। मैं गतिशीलता मे प्राण भरना चाहता हूँ। मैं पुरुष म सुगधि भरना चाहता हूँ। अधकार का विनाश मेरे जीवन का उद्देश्य होगा। हाँ, अधकार का विनाश। पिता के पापाचार की स्मृति रेखा का काला चिह्न उज्ज्वलता मे लीन होकर मात्तड की भाँति चमकने लगे।

[दरवाजे पर शब्द]

कौन ? (स्मरण कर) ओह, विद्याधर की आत्मा ? मेरे अभिशाप की पूर्ति (जोर से) आओ।

[विद्याधर की आत्मा का प्रवेश]

तुम कहाँ से आ रहे हो ?

जीवात्मा जागृति के अथाह सागर से।

प्रजापति (व्यग से) नन्दन कुज से नही ? देखो वत्स, क्या तुम ऐसी लहर बनना चाहते हो, जिसमे किसी इद्रधनुष का प्रतिबिंब पडे।

जीवात्मा (आश्चय से) कैसे इद्रधनुष का ?

प्रजापति भू मडल मे प्रेम का ?

जीवात्मा प्रेम क्या ?

प्रजापति (हँसकर) ओह, प्रेम ? उससे लोग दिन मे हँसते और रात म रोते हैं।

जीवात्मा (आश्चय से) रात म रोत है !

प्रजापति हा, भू-मडल म दो प्रकार के व्यक्ति होंगे। भू मडल जानत हो, कहाँ है ?

जीवात्मा कहा है ?

प्रजापति देखो, उस सौरमडल म। किंतु तुम चिंता मत करो। तुम्हे अभी वहा पहुँचा दूगा।

जीवात्मा बहुत अच्छा।

प्रजापति मैं प्रजापति हूँ। मैं तुम्हे वहाँ अभी भजूगा स्त्री बनाकर। हा, उस भूमडल म दो प्रकार के व्यक्ति होग। एक का नाम है पुरुष, दूसरे का स्त्री। कभी पुरुष कठोर और स्त्री कोमल और कभी स्त्री कठोर, पुरुष कोमल !

जीवात्मा दोनो कोमल नहीं होते ?

प्रजापति होते हैं किन्तु दोनो की कोमलता का अथ प्रेम न होकर विवाह होता है। स्त्री का पुरुष के लिए कोमल बनना पडता है और पुरुष को स्त्री के लिए। इसी आत्म बलिदान का नाम 'विवाह' है।

जीवात्मा विवाह ?

प्रजापति हा, विवाह और प्रेम मे अन्तर है। विवाह कहते हैं ऐसी हँसी को, जिसमे रोना छिपा रहता है और प्रेम कहते हैं ऐसे रोने को, जिसम हँसी छिपी रहती है। ससार के लोग प्राय ऐसे रोन को विशेष पसन्द करेंगे, जिसमे हँसी छिपी रहती है !

जीवात्मा और जो लोग रोना और हँसना नही जानते, वे लोग ?

प्रजापति ऐसे लोग पत्थर की तरह होगे। कोई ठोकर मार दे तो ठीक है कोई ईश्वर बनाकर पूज ले तो ठीक है। ससार के लोगो के लिए रोना और हँसना आवश्यक है।

जीवात्मा आवश्यक है ?

प्रजापति हा, अन्यथा वे लोग ससार छोड दें। बहुत से ज्ञानी लोग रोना और हँसना छोडकर वन म प्रवेश करेंगे, किन्तु ऐसा करने से वे मनुष्य नही रहगे। वे हो जायेंगे वन के पेड, पहाड के पत्थर।

जीवात्मा मैं क्या करूँगा ?

प्रजापति तुम ! स्त्री बनकर पहले तो रोना सीखोगे। बाद मे तुम्ह रोने को हँसी बनाना होगा। मैं चाहता हूँ कि तुम स्त्री होकर भी वैसी बनो ! पतिव्रता होना सीखो !

जीवात्मा पतिव्रता क्या ?

प्रजापति विवाह में मिले हुए पति की छाया में समा जाना होगा। उसके काटों को गूंथकर कहा कि यह कमल की माला है। उसके चरणों का नाम हो तुम्हारा मस्तक। उसकी अंधी आंख तुम्हारी दृष्टि हो, उसका लंगड़ा पैर तुम्हारी गति हो। उसके बधिर कान तुम्हारी श्रवण शक्ति हो। उसकी दीनता तुम्हारी संपत्ति हो और वत्स, उसकी विरह रात्रि में मिलन का प्रभात झांकता हो।

जीवात्मा विरह रात्रि किसे कहते हैं, प्रजापति ?

प्रजापति विरह-रात्रि ! आह, विरह-रात्रि उसे कहते हैं, जिसमें तारों में अंगार के अंकुर निकलते हैं, चंद्रमा एक ज्वालामुखी का मुख दीख पड़ता है और कली के विकास में तीर खिलता है, सुगंधि चुपचाप आकर डस लेती है।

जीवात्मा तो वहां मैं नहीं जाऊंगा, प्रजापति !

प्रजापति अनुभव प्राप्त करो, वत्स। सुगंधि से डसे जाने पर वहां के कल्प वृक्ष में तुम्हें सच्ची शांति मिलेगी। चंद्रमा अपने अमृत से तुम्हारे पैर धो देगा।

जीवात्मा सचमुच !

प्रजापति निस्सन्देह !

जीवात्मा अच्छा तब चला जाऊंगा। किन्तु मैं किस प्रकार वहां पहुंचूं ?

प्रजापति सोकर। तुम जागकर वहां नहीं पहुंच सकते। तुम्हें सोना ही होगा। वेश बदलकर तुम वहां जाओगे—सोते हुए। तभी तुम वहां के अनुभव प्राप्त करोगे—अपनी नींद में स्वप्न की भांति।

जीवात्मा फिर जागूंगा कैसे ?

प्रजापति विश्वात्मा की इच्छा से। इस नींद को भू मण्डल में जीवन कहते हैं।

जीवात्मा (आश्चर्य से) जीवन कहते हैं ! बड़े विचित्र व्यक्ति हैं वहां के ! तब तो सत्य को मिथ्या और मिथ्या को सत्य कहनेवाले ही व्यक्ति वहां होंगे ?

प्रजापति तभी तुम्हारे अनुभव यहां से भिन्न होंगे। तुम यहां के अनुभवों से भिन्न नवीन अनुभव प्राप्त करोगे।

जीवात्मा (सोचते हुए) नींद को कहते हैं जीवन ! आनन्द को कहते होंगे पीड़ा और प्रकाश को कहते होंगे अंधकार !

प्रजापति हां, अंधकार। तुमने अच्छा स्मरण दिलाया। तुम्हें वहां अंधकार का नाश करना होगा।

जीवात्मा कैसे अन्धकार का ?

प्रजापति वह अन्धकार, जो पाप से उत्पन्न है। जिसके तामसी रहस्य मे पाप के विकास की सीमाएँ बहुत दूर तक फैल जाती हैं।

जीवात्मा किस प्रकार नाश करूँगा ?

प्रजापति अपने मस्तिष्क की शक्ति से अन्धकार को प्रकाश मे परिवर्तित करना होगा, मैं तुम्हे स्त्री का रूप दूगा। ऐसी स्त्री जो अपने क्रोध म ज्वालामुखी शक्ति के साथ जीवित रहेगी। वह चाहेगी तो आग मे जल की शीतलता उत्पन्न करेगी और यदि चाहेगी तो जल की शीतलता से आग उत्पन्न करेगी।

जीवात्मा उसे प्रेम करने का अधिकार तो होगा ही ? आपने अभी कहा था।

प्रजापति सबसे अधिक। किन्तु वह अपने प्रेम को भाषा म प्रकट न कर सकेगी। एक मुस्कान और दो आसू ही उसके प्रेम की भाषा होगी, प्रेम की आशा म मौन और प्रेम की निराशा मे भी मौन। लेकिन इस प्रेम की निराशा मे उसका जीवन आसू बनकर बहेगा—इस आकाश गगा की भाँति। करुण, किन्तु शब्दहीन !

जीवात्मा मैं ऐसे प्रेम को निवाह सकूगा ?

प्रजापति यदि आत्म-हत्या या प्राणदण्ड से बचे रहे तो !

जीवात्मा अच्छा, तो अब जाऊँ ? आपकी आज्ञा है ?

प्रजापति सत, चित, आनन्द !

[जीवात्मा का प्रस्थान]

(पुकारकर) माया ! (माया का प्रवेश)
माया ! मैंने विद्याधर को स्त्री और मनवा को पुरुष बनाकर ससार मे भेज दिया है। इनके द्वारा मैं अधकार का नाश करूँगा। प्रतिभा, मेधा और वाक्शक्ति से अज्ञान एक क्षण म नष्ट हो जायेगा।

माया प्रभु, अन्धकार का रहना आवश्यक है।

प्रजापति क्यो ?

माया अन्धकार मे ही मेरा निर्माण-कार्य होगा। रात को कली सोयेगी, अन्धकार के बाद वह फूल बनकर उठेगी ! सन्ध्या समय वृद्ध सूर्य अस्त होकर अन्धकार के बाद बाल रवि होकर तेज-सम्पन्न होगा। अन्धकार के भीतर ही चन्द्र के शीश पर कला का अभिषेक होगा या प्रेमी की भाँति वह कलाहीन होगा। अन्धकार मे

हो स्वप्न होंगे और उन स्वप्नों में ही व्रीड़ा की उषा में स्नात मौन निमन्त्रण साकार होगा। प्रतीक्षा के वृन्त पर मिलन का फूल धीरे से अपनी पखुड़ी में पराग रेखा का बाहु पाश बनायेगा। ज्योत्स्ना में उमंगों के हिंडोले पर कितने हृदयों की ध्वनि प्रेम का वृत्त बनायेगी! प्रभु, अंधकार का रहना आवश्यक है! अंधकार तो जैसे प्रकृति का विश्राम होगा।

प्रजापति विश्राम!

माया हाँ, प्रभु, विश्राम ही में रहस्य का निर्माण होता है। फिर एक बात और भी है। यौवन का विकास छिपकर होता है। यदि यह प्रकाश में नेत्रों के सामने हो तो उसका सारा रहस्य, सारा कौतूहल, सारा आकर्षण कम हो जायगा जैसे किरणों का स्पष्ट रूप से बढ़ता हुआ उत्ताप। तब यह यौवन किरणों की भाँति गम्य होकर सारी पृथ्वी को झुलसा देगा। उसमें अनुराग के उभार की कोमल उष्णता न रहेगी।

प्रजापति माया, मैं इस यौवन से ही संसार को जलाना चाहता हूँ। इस तरह जलाऊँ कि संसार जलता हुआ अंगार बना रहे और उसकी उन विनाशकारी किरणों से अंधकार प्रकाश में परिवर्तित हो जाये।

माया जैसी आज्ञा प्रभु, किन्तु जिस प्रकार उज्ज्वल फूल के विकास के लिए काली मिट्टी की आवश्यकता है पुण्य के विकास के लिए पाप की पृष्ठभूमि है उस प्रकार प्रकाश के विकास के लिए अंधकार की भूमि भी चाहिए।

प्रजापति ठीक है, किन्तु मेरा निर्णय ऐसा नहीं होगा। जाओ सप्तर्षियों से कहना कि वे एक क्षण को मुझे दर्शन दें।

माया जो आज्ञा। (जाती है, किन्तु रुककर) किन्तु प्रभु, सप्तर्षि धर्म की व्यवस्था के सिद्धान्त सोच रहे हैं। केवल कश्यप समाधि से जागे हैं। वे अपनी धर्मपत्नी अदिति की उदासी दूर करने की चेष्टा में हैं।

प्रजापति अच्छा! कश्यप से कहना कि भगवान् के अवतार में अदिति की उदासी दूर होगी। और सप्तर्षि इतनी शीघ्रता से मेरी आज्ञा के पालन में प्रवृत्त हो गये?

माया आपकी आज्ञा प्रमाण है प्रभु!

प्रजापति अच्छा मेरे पुत्र कश्यप ही को भेजो।

माया जो आज्ञा।

प्रजापति अत्रि, वशिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज, तुम धम की व्यवस्था करो। मैं तुम्हारी सहायता करूँगा। ऐसा धम बनाऊँगा जिसस अधकार कही रहेगा भी नही। वत्स कश्यप, तुम मेरे सहयोगी बनो। (द्वार पर शब्द होता है)

प्रजापति वत्स कश्यप, चले आओ!

[कश्यप का प्रवेश। ऊँचा कद। कमल के समान आँखें। सिर पर लम्बी जटाएँ। वल्कल वस्त्र। बिना खरादी हुई मणि के सदृश रूखे शरीर में कांति। कुश और कास का लिपटा हुआ आसन वक्ष भाग म दबा हुआ है। वे उसी भाति प्रवेश करते हैं, जैस लकडियो के सघष से आग उत्पन होती है।]

प्रजापति वत्स कश्यप, क्या कर रहे थे?

कश्यप अग्निहोत्रशाला म हवन कर ।

प्रजापति मैं जानता हूँ। अदिति को पुत्र की इच्छा है। स्वय ब्रह्मा उनमें अवतार लेंगे। किंतु कश्यप, तुम जानते हो—मेरी ही आज्ञा से पवन चलता है, सूय तपता है, मेघ बरसते हैं, आग जलती है। मैं प्रजापति हूँ। मैंने अपनी शक्ति से स्त्री और पुरुष का निर्माण किया है। क्या पुरुष और स्त्री मेरे मन स अधकार का नाश नही करेंगे! मैं इस समय विश्वात्मा की शक्ति का प्रतीक हूँ। पृथ्वी जल, तेज, वायु और आकाश महाभूतो के साथ मैंने गध, रस, रूप, स्पश और शब्द का निर्माण किया है। क्या य विषय पुरुष और स्त्री के लिए पर्याप्त न होगे!

कश्यप क्या आपने स्त्री और पुरुष का निर्माण कर दिया है?

प्रजापति कुछ क्षण पहले। अपने भवतर म नवीन ढग से।

कश्यप पितदेव, स्त्री और पुरुष की सृष्टि अपूण हुई।

प्रजापति (भौहे सिकोडकर) क्या?

कश्यप क्योकि वे प्रलय के अधकार म समा जायेंगे?

प्रजापति किंतु स्त्री और पुरुष के निर्माण के बाद अधकार रह कैसे सकेगा?

कश्यप यक्षो और राक्षसो के पालनाथ! रात्रि यक्षो और राक्षसो की है। उन्ही की भूख प्यास अधकार मे शात होती है। यक्षो और राक्षसो के जीवन के लिए अधकार आवश्यक है।

प्रजापति ठीक है कश्यप किन्तु ।

कश्यप प्रभु, देवताओं की सात्विक भावनाओं के साथ राक्षसों की तामसिक भावनाएँ भी रहेंगी। ब्रह्मा तो सबका पालन करते हैं और इसी प्रकार सृष्टि सन्तुलित करते हैं।

प्रजापति तुम किस अंधकार का पक्ष ग्रहण करते हो कश्यप? तुम कच्छप रूप से उत्पन्न हुए थे। अतः तुम्हें भी अपने पूर्व स्वभाव से अंधकार और कच्छप का काला रंग अच्छा लगता है।

कश्यप प्रभु, मुझे तो सभी रंग अच्छे लगते हैं। सब रंगों में प्रभु की कांति है। किन्तु यह सोचिए प्रभु, यदि अंधकार न होगा तो पुरुष और देवताओं में अन्तर ही क्या रह जायेगा? (एकाएक चौंककर) प्रभु यह क्या! अरे, परिवर्तन कैसा?

प्रजापति कश्यप कुछ मत कहो, मैं जानता हूँ।

कश्यप किन्तु प्रभु, अब आपकी नवीन सृष्टि क्या होगी? आप उसे कार्यशील होते हुए देख भी नहीं सके प्रभु!

प्रजापति मुझे चिन्ता नहीं है, कश्यप!

कश्यप प्रभु, आपका हीरक-पदिक धूमिल दीख रहा है। आप दुर्बल होते जा रहे हैं। आपका मन्वन्तर समाप्त हो गया ज्ञात होता है।

प्रजापति हाँ, मन्वन्तर समाप्त हो गया। इसलिए प्रजापति का यह चिह्न धूमिल होता जा रहा है। (कण्ठ का हीरक पदिक दिखलाते हैं)

कश्यप इसी के मलीन होने से आप क्षीण होते जा रहे हैं। (कुछ प्रकाश बुझ जाता है) आपकी शक्ति शेष होती जा रही है। आपके कक्ष में अंधकार होता जा रहा है।

प्रजापति कश्यप, मैं मन्वन्तर की समाप्ति के साथ समाप्त हो जाऊँगा। यही इच्छा थी कि मैं पुरुष और स्त्री के निर्माण का परिणाम देख लेता किन्तु मुझे चिन्ता नहीं है। परिणाम कुछ भी हो। मेरी सृष्टि का इतिहास तो सुरक्षित रहेगा ही। (शिथिल स्वर में) कश्यप, अब मैं शेष हो रहा हूँ। (अंधकार हो जाता है)

कश्यप पिताजी, कहाँ आप अंधकार का नाश करना चाहते थे और कहाँ आप स्वयं अंधकार में लीन होते जा रहे हैं!

प्रजापति (शिथिल स्वर में) विश्वगुरु की इच्छा!

कश्यप मैं विश्वगुरु को इसकी सूचना दूँ?

प्रजापति वे जानते हैं कि मैं समाप्त हो रहा हूँ।

कश्यप मैं अपने सहयोगी अन्य छः ऋषियों को सूचित करूँ कि वे आपका स्तवन करें। मैं उनमें सम्मिलित हो जाऊँगा।

[नेपथ्य में भयानक कोलाहल होता है]

कश्यप यह क्या ?

प्रजापति अंधकार का आगमन ! (कुछ प्रकाश और बुझ जाता है)

कश्यप आह, मैं आपकी शांति के लिए स्तवन करने जाऊँगा। प्रणाम, प्रभु !

[प्रजापति प्रणाम स्वीकार करते हैं। कश्यप का प्रस्थान]

प्रजापति (विकृत स्वर में) अंधकार अंधकार विश्वगुरु तुमने अपने आपको जीवित रखा। क्या महापुरुषों का पाप भी पुण्य हो जाता है ?

[नेपथ्य से फिर भयानक शब्द। विद्याधर और मेनका का जीव रूप में प्रवेश]

मेनका (कर्कश स्वर में) प्रजापति, तीस वर्षों में मैंने अनुभव किया कि तुम्हारे अस्तित्व की भावना मनुष्य की सबसे बड़ी दुर्बलता है। तुम्हारा धर्म जीवन का विष, वही धर्म जीवन का सबसे बड़ा अंधकार है।

विद्याधर (कर्कश स्वर में) प्रजापति प्रेम हो नहीं सकता यदि वासना न हो। बिना शरीर की आसक्ति के प्रेम कपालवत ऋषियों की असफल वासना है। प्रेम में चुम्बन है और चुम्बन में प्रेम। तुम पतिव्रता के मन और शरीर दोनों को बाँधना चाहते हो ? मैं अंधकार फैलाऊँगी, प्रजापति।

प्रजापति (शांति से) तुम दोनों संसार के संस्कारों से भरे हुए हो। पवित्र बनो।

मेनका (जोर से) मैं तुम्हारा नाश करूँगी। मैंने आत्महत्या की है (वक्र-दृष्टि)।

विद्याधर (जोर से) मैं तुम्हारा नाश करूँगा। मैंने प्राणदण्ड पाया है (क्रोध दृष्टि)।

प्रजापति (शांति से) मैं स्वयं समाप्त होने जा रहा हूँ विद्याधर, मैं स्वयं नष्ट हो रहा हूँ, मेनका ! (पुकारकर) माया !

[माया का प्रवेश]

माया आज्ञा प्रभु मैं केवल बारह क्षणों तक ही आपकी आज्ञाकारिणी हूँ।

प्रजापति (आदेश स्वर किन्तु क्षीण) इसी काल में मेनका और विद्याधर की आत्माओं को पवित्र करो और अपना प्रभाव इन पर से हटा लो।

माया जो आज्ञा।

[माया मेनका और विद्याधर की ओर देखती है। दोनों के श्याम आच्छादन गिर जाते हैं। उनके गिरते ही माया चली जाती है। विद्याधर और मेनका पूर्ववत् हो जाते हैं]

प्रजापति विद्याधर!

विद्याधर (हाथ जोड़कर) प्रभु प्रजापति को प्रणाम।

प्रजापति मेनका!

मेनका (हाथ जोड़कर) प्रभु प्रजापति का अभिनन्दन।

प्रजापति विद्याधर और मेनका! अब तुम दोनों एक दूसरे से प्रेम कर सकते हो।

मेनका, विद्याधर (परस्पर देखकर) प्रभु की कृपा।

प्रजापति (क्रमशः क्षीण होते हुए स्वर में) विद्याधर मेरी सृष्टि अपूर्ण रही। मेनका मैंने पुरुष और स्त्री के निर्माण की कल्पना व्यर्थ की। विश्वगुरु की कथा की भाँति मेरी भी यह पाप-कथा अमर रहेगी विद्याधर (लड़खड़ाते हैं) मेनका (सँभलते हुए) मेरे विनाश में आज पुरुष और स्त्री की सृष्टि अमर हो।

[प्रजापति गिरते हुए सिंहासन का सहारा लेते हैं। क्षीण प्रकाश रह जाता है।]

विद्याधर ओह! प्रजापति! (दौड़कर प्रजापति को सँभालता है।)

मेनका (स्तम्भित स्वर में) अ न्ध का र!

[परदा गिरता है]

०००



गिरिराज शरण

रचनात्मक लेखन हो या शोध सपादन हो या समीक्षा—साहित्य की हर प्रमुख विधा में अपनी करामाती कलम क कमाल दिखानेवाले डॉ गिरिराज शरण हिन्दी के सुपरिचित साहित्यकार हैं। इनका जन्म सन् 1944 में मुरादाबाद (उ प्र) के अनजाने कस्बे सभल में हुआ।

इनके साठ से अधिक मौलिक और सपादित ग्रन्थ हिन्दी ससार में अलौकिक लोकप्रियता के कीर्तिमान सिद्ध हुए हैं। शाध और समीक्षा क क्षेत्र में भी इनक दो ग्रन्थ असाधारण महत्त्व प्राप्त कर चुक हैं—'तुलसा मानस सन्दर्भ (दो भाग) और 'शोध सन्दर्भ । हिन्दी साहित्य के आरम्भ काल से सन् 1986 तक हुए सम्पूर्ण हिन्दी शाधकार्य का अद्वितीय सन्दर्भ ग्रन्थ 'शाध सन्दर्भ अपनी नवीनता और उपयागिता मे अप्रतिम है। प्रस्तुत एकाकी सकलन माला और बहुचर्चित कहानी सकलन माला तथा उनकी अन्य महत्त्वपूर्ण कतियों का परिचय एक अलग अध्याय में समाने याग्य है।

सम्प्रति वर्धमान स्नातकात्तर महाविद्यालय (बिजनौर) मं हिन्दा विभाग क वरिष्ठ प्रवक्ता डॉ गिरिराज शरण का अनवरत रचनाधर्मिता कुछ और उल्लखनाय रचनाआ की आशा और विश्वास जगाती है।